2.3

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार पत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-81-7450-934-5

प्रथम संस्करण
जनवरी 2009 पौष 1930

PD 3T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2008

रु 30.00

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन : *अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसैट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोलबाग, नयी दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

सार-संक्षेप

परिचयः संभावनाओं की तलाश

आरंभ में ही भारतीय स्कूली व्यवस्था का एक विवेचनात्मक विश्लेषण करने से यह प्रकट होता है कि यह एक प्रकार की कठोर व्यवस्था है जो इस प्रकार की शिक्षा उपलब्ध करा रही है जिसमें पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को विकसित करने की पद्धतियाँ परीक्षा प्रणाली के पैटर्न और उसकी ज़रूरतों पर आधारित हैं न कि शिक्षा के लक्ष्य, अधिगम की ज़रूरतों एवं बच्चों के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश जैसी मिली-जुली कसौटियों पर। आज अधिकांश विद्यालयों में शैक्षणिक पद्धति के सबसे उल्लेखनीय लक्षण हैं – नीरस दिनचर्या, ऊबे हुए शिक्षक और विद्यार्थी एवं रट्टू तोते की तरह कंठस्थ करने की कवायद।

यह आधार पत्र लचीली और सक्षम रूपरेखा देने की संभावनाओं को तलाशने का एक प्रयास करता है ताकि विद्यार्थियों और शिक्षकों को ज़्यादा संख्या में और बेहतर विकल्प उपलब्ध हो सकें और साथ ही बच्चों और समुदाय की व्यापक स्तर पर इन चुनावों के लिए बड़ी भूमिका सुनिश्चित हो। कुछ मामलों में देखा गया है कि राज्यों ने अपने स्तर पर स्वतः प्रयास करके पाठ्यचर्या को पुनः परिभाषित किया तथा अपनी क्षेत्रीय आवश्यकतानुसार उसे निर्धारित किया और शिक्षण प्रक्रिया संबंधी सामग्री भी मुहैया करवाई। उपरोक्त की रोशनी में यह विश्लेषण करना महत्त्वपूर्ण होगा कि क्या वर्तमान में प्रचलित नीति और पाठ्यचर्या की रूपरेखा शिक्षा में वांछित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए विविधतापूर्ण और उपयुक्त पाठ्यचर्या उपागमों के विकास को सुगम करती है?

समानता के लिए पाठ्यचर्या

नीति संबंधी दस्तावेज़ों के अध्ययन से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि शिक्षा के माध्यम से समानता का उद्देश्य पूरा करने के संदर्भ में कई सालों से लगातार प्रश्न उठ रहे हैं और इस संबंध में कोई भ्रम नहीं है। जहाँ तक पाठ्यचर्या की रूपरेखा में समानता के दृष्टिकोण का मुद्दा है इस संबंध में कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। क्योंकि समस्या है लचीलेपन की अवधारणा या विविधता की जिसका नज़दीकी संबंध विरासत में प्राप्त समुचित एवं अहम व्यवस्था से है जहाँ पाठ्यचर्या के कार्य और उसके आचरण की भूमिका को स्पष्ट शब्दों में परिभाषित नहीं किया गया है। इसी दिशा में *'पाठ्यक्रमों', 'मानकों'* को परिभाषित करने तथा 'केंद्रिक' पाठ्यचर्या के आगे जाने में समस्याएँ हैं। व्यवस्था का पाठ्यचर्या में वास्तविक बहुलता और लचीलेपन को स्वीकृति देने के प्रति नकारात्मक रवैया 'शिक्षा बिना बोझ के' (भारत सरकार, 1993) की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दिया गया है।

पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों में विविधता लाने और इन्हें विकेंद्रीकृत बनाने की प्रक्रिया में विगत वर्षों की अनिश्चितता यह आवश्यकता सामने रखती है कि व्यापक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दृष्टि से पाठ्यचर्या को गुणवत्तापूर्ण और सामान्य स्तर के योग्य बनाने की दिशा में उपयुक्त प्रयासों की तत्काल आवश्यकता है। *पाठ्यचर्या के विकास एवं विकेंद्रीकरण संबंधी प्रोत्साहन के मद्देनज़र सुझाव है कि इस विशेष कार्य को अपनाए जाने और नियामक तरीके स्थापित करने के लिए राज्य स्तर की एक स्वतंत्र इकाई, एक फेडरल राष्ट्रीय संरचना के साथ कायम की जाए, जो विभिन्न पाठ्यचर्या के पैकेजों का अनुमोदन करे, जिसमें पाठयपुस्तकें, शिक्षक-प्रशिक्षण और पद नियुक्ति की प्रक्रिया, परीक्षाएँ और*

परीक्षण आदि शामिल हों। यह राष्ट्रीय संरचना केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सेंट्रल एडवाइज़री बोर्ड ऑफ़ एजुकेशन-केब) के प्रति जवाबदेह हो सकती है। यह व्यावसायिक विकास की योग्यता एवं निर्देशिका जारी करे तथा दस्तावेज़ों का संचालन और उनकी समीक्षा करे, ताकि राज्य में काम करने वाली इकाइयों के साथ ज़रूरी विमर्श की व्यवस्था को तय किया जाए। यह भी सुझाव दिया गया कि व्यावसायिक ढंग से एक से एक नियामक तरीका रेगुलेटरी मैकेनिज़्म बनाया जाना चाहिए ताकि पाठ्यचर्या का अनुमोदन करने वाली इकाइयों के बीच नौकरशाही और राजनीतिक दबावों, व्यक्तिगत स्वार्थों या भ्रष्ट आचरण के कारण उत्पन्न समस्याओं और रुकावटों को दूर किया जा सके।[1]

प्रत्ययात्मक क्षेत्र का मानचित्रण : पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक की धारणाएँ

कार्यक्षेत्र से प्राप्त विचारों तथा मौजूदा जमीनी सच्चाई और पाठ्यचर्या संबंधी दस्तावेज़ों से स्पष्ट होता है कि पिछली तमाम पाठ्यचर्याओं ने उक्त मुद्दों पर चिंता तो जताई है किंतु पाठ्यचर्या की सामग्री के उद्देश्यों के संबंध में कोई स्पष्ट नज़रिया नहीं दिया है। ज्ञान के बारे में दृष्टिकोण एवं शिक्षा शास्त्र की व्याख्या भी अस्पष्ट है। तमाम सुझावों में तर्क और स्पष्टता का अभाव है। इसे संबोधित करने के लिए इस खंड में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की अवधारणाओं को जाँचा गया है तथा इस आधार पर चर्चा की गई है कि पाठ्यचर्या बच्चे के लिए सीखने को सुगम बनाने की एक योजना है। यह योजना शुरू होती है वहाँ से, जहाँ बच्चा होता है। यह सीखने के उन सभी आयामों और पहलुओं को सूचीबद्ध करती है जो ज़रूरी हैं। यह कारण भी देती है कि इस प्रकार का सीखना क्यों ज़रूरी समझा गया और यह किन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। यह योजना विशेष स्तरों के उद्देश्यों को अलग-अलग परिभाषित करेगी, कि कौन-सी पाठ्यसामग्री किस स्तर पर पढ़ाई जाए और किस प्रकार उसका संचालन हो। यह शिक्षा-प्रणाली के सामान्य सिद्धांत और परीक्षण, योग्यता का आधार तथा बेहतर शिक्षण सामग्री की भी सिफ़ारिश करती है।

पाठ्यचर्या विकल्पों के आधार के लिए औचित्य देना महत्त्वपूर्ण है। पाठ्यचर्या विकल्प के प्रश्न को समझने में मुख्य है पाठ्यचर्या और शिक्षा के लक्ष्यों के बीच संबंधों को समझना। इसलिए पाठ्यचर्या को अवधारणात्मक-संरचना के रूप में देखना चाहिए न कि कक्षा में क्या करना है इसके विवरण के रूप में।

व्यवस्था माँग करती है कार्य योग्य सिद्धांतों और अधिकतर क्षेत्रों जैसे विषयवस्तु के चुनाव, बच्चों से अंत:क्रिया के तरीकों, कक्षा-कक्ष संगठन तथा शिक्षण-अधिगम सामग्री इत्यादि में कसौटियों के निधरिण की। यहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पाठ्यक्रम, शिक्षणशास्त्र संबंधित निर्णयों, पाठ्यपुस्तकों इत्यादि में विकल्पों के चुनाव का आधार क्या है। *यह भी सुझाव दिया गया है कि पाठ्यचर्या की रूपरेखा के लिए जिन मूलभूत मान्यताओं के समुच्चय की आवश्यकता होती है उन्हें आंतरिक रूप से अपरिवर्तनीय होना चाहिए, स्पष्ट रूप से उच्चरित एवं सभी पणधारियों (स्टेकहोल्डर) द्वारा स्वीकृत होना चाहिए।*

अंतत: पाठ्यचर्या के विकास को सुगम बनाने के लिए ध्यान में रखने के लिए क्रियात्मक परिभाषाएँ भी दी गई हैं:

---

1. फोकस ग्रुप की एक महिला सदस्य का इस मुद्दे पर भिन्न मत था। वह नहीं चाहती थी कि इस प्रकार की कोई स्वतंत्र इकाई स्थापित करनी चाहिए।

पाठ्यचर्या की रूपरेखा : एक ऐसी योजना जो व्यक्ति और समाज के लिए शैक्षिक लक्ष्यों की व्याख्या करे, जिससे समझ बने कि स्कूलों में बच्चों को किस प्रकार के अधिगम के अनुभव दिए जाएँ।

पाठ्यचर्या : सही रूप से निर्धारित गतिविधियों का एक समूह जिनकी रचना कुछ खास शैक्षिक उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए हो। उद्देश्यों का एक ऐसा समूह जिसमें यह शामिल हो कि विषयवस्तु के हिसाब से क्या पढ़ाया जाए और वह ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियाँ जिन्हें खासतौर से बढ़ावा मिले साथ ही विषयवस्तु के चुनाव की कसौटियों को दर्शाते कथन, विधियों के विकल्प तथा सामग्री एवं मूल्यांकन। उपर्युक्त ढाँचे के संदर्भ में पाठ्यचर्या का अर्थ *'पाठ्यचर्या के केंद्रिक'* एवं *'पाठ्यक्रम'* दोनों को इकट्ठा करके होगा।

पाठ्यक्रम : इसका अर्थ है विषयवस्तु के हिसाब से क्या पढ़ाया जाए और वे ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियाँ जिन्हें खास रूप से बढ़ावा मिले, स्तर विशिष्ट उद्देश्यों के साथ।

समूह की केंद्रीभूत स्थिति

पाठ्यचर्या की रूपरेखा ऐसी हो जो:

- ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करे जिसमें स्कूलों के स्तर पर विषयवस्तु/पाठ्य-सामग्री, प्रशिक्षण-प्रणाली, शिक्षण-सामग्री और आकलन के चयन से संबंधित निर्णय स्कूल एवं शिक्षक स्वयं ले सकें,। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा द्वारा स्कूलों को ज़्यादा से ज़्यादा स्वायत्तता प्रदान की जाए।
- शिक्षकों को स्वयं अपने अनुभवों से सीखते हुए चिंतनशील कार्यकर्ता बनाने में सहायता करे।
- समझ कर सीखने और सीखने के अधिगम (लर्निंग टू लर्न) पर ज़ोर दे तथा बच्चों के व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर समझने की क्षमता-वृद्धि में उनकी सहायता करें।

शिक्षा के सामान्य उद्देश्य

इस रूपरेखा के अंतर्गत उद्देश्यों को उच्चारित करने के दो मुख्य कारण हैं : पहला, पूरे समाज की सामाजिक, राजनीतिक अपेक्षाएँ संयुक्त रूप में प्रतिबिंबित हो सकें। दूसरा, महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण प्रणाली द्वारा शिक्षक को पाठ्यसामग्री एवं शिक्षण पद्धतियों के चुनाव के लिए दिशानिर्देश देने का सार्थक शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्य। यहाँ उद्देश्यों को केवल दो भागों में रखकर सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उनकी व्याख्या अथवा उनके औचित्य का वर्णन नहीं है।

(क) मूल्य और आदर्श : शिक्षा को समाज में निम्नलिखित के प्रति विवेकशील कटिबद्धता को बढ़ावा देना चाहिए एवं विद्यार्थियों में इसके विकास के लिए मदद करनी चाहिए।

- समानता - स्तर तथा अवसर की।
- स्वतंत्रता - विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और जीवन-मूल्य की।
- मस्तिष्क की स्वायत्तता - तर्क के आधार पर सोचने-समझने की स्वतंत्रता की।
- कार्य में स्वायत्तता - स्वेच्छा और स्वतंत्रता से चयन करने, निर्णय लेने और कार्य करने की स्वतंत्रता।
- दूसरों का सम्मान करना और उनका हित चाहना - समाज के सभी सदस्यों की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए उनके हित और उनकी संवेदनाओं का सम्मान।
- न्याय-सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक।

(ख) मनुष्य की क्षमताएँ

- ज्ञान-आधार - पर्याप्त व्यापक ज्ञान-आधार जिसमें शामिल हैं सामाजिक-राजनीतिक जीवन के सभी संकट से घिरे क्षेत्र, जाँच-पड़ताल तथा ज्ञान की वैधता सिद्ध करने के बुनियादी तरीके।
- दूसरों के प्रति संवेदनशीलता - दूसरों के प्रति संवेदनशीलता तथा ज्ञान के साथ जुड़ी भावनाएँ मूल्यों के प्रति विवेकशील प्रतिबद्धता का आधार होनी चाहिए।
- तार्किक/आलोचनात्मक दृष्टिकोण - आलोचनात्मक तार्किकता ही सोचने और कार्य करने में स्वायत्तता का एकमात्र तरीका है।
- सीखने की प्रक्रिया - ज्ञान/जानकारी, तर्क, और क्षमताओं के विकास की भविष्य की आवश्यकताएँ पहले से ज्ञात नहीं की जा सकतीं। इसलिए, लोकतांत्रिक समाज में स्वायत्तता से कार्य करने के लिए आवश्यक है नयी परिस्थितियों में नयी आवश्यकताओं के अनुसार सीखने की योग्यता।
- आर्थिक प्रक्रिया में भागीदार बनने और कार्य करने की योग्यता - जीवन में चुनाव करने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी की योग्यता निर्भर करती है समाज की विभिन्न क्रियाओं में योगदान देने की योग्यता पर।
- सौंदर्यबोध/रचना - सुंदरता तथा कला के विभिन्न रूपों की सराहना करने का बोध मानवीय जीवन का एक अहम पहलू है।

स्तर अनुसार उद्देश्य

शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों के मद्देनज़र विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग उद्देश्यों के वर्गीकरण की आवश्यकता है, जैसे बच्चे के विकास की अवस्थाएँ, ज्ञान की प्रकृति सामान्य तौर पर और खासतौर पर पाठ्यचर्या के विषय-क्षेत्र के संबंध में और बच्चे का सामाजिक-राजनीतिक परिवेश। इसके अतिरिक्त विशिष्ट उद्देश्य होने चाहिए जिनका इस्तेमाल पाठ्य सामग्री के चुनाव एवं संगठन के लिए दिशा निर्देश की तरह किया जा सके। प्रस्ताव रखा गया कि पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को सामान्य लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए ढाला जाए। पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का निर्माण सबके लिए होना चाहिए किंतु अंतिम अवस्था में इन्हें जनपद और राज्य स्तर पर प्रत्येक स्कूल में विद्यार्थियों और अध्यापकों की आवश्यकतानुसार चिह्नित किया जाना चाहिए।

विषयवस्तु के चुनाव और संगठन के सिद्धांत

प्राय: कुछ संस्थानों की ओर से नए विषय को पाठ्यचर्या में शामिल करने की बात उठती रही है। *ऐसे में सुझाव दिया गया कि पाठ्यचर्या संबंधी ज्ञान का चुनाव कम-से-कम चार भिन्न परिप्रेक्ष्यों में विचारणीय होना चाहिए : शिक्षा के लक्ष्य, ज्ञान मीमांसावादी परिप्रेक्ष्य, बच्चों का शिक्षण और मानसिक विकास तथा बच्चे का संदर्भ।*

शिक्षण-अधिगम पद्धतियाँ और कक्षागत अभ्यास

कक्षागत अभ्यासों के चुनाव के लिए निम्नलिखित मूल सिद्धांत रेखांकित किए जा सकते हैं:

- *इस प्रकार की समझ कि बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण खुद करते हैं।*
- *सीखने की प्रक्रिया में अनुभव का महत्त्व।*

- *ज्ञान के निर्माण में बच्चों की सक्रिय भागीदारी का महत्त्व।*
- *कई प्रकार की स्थितियों/परिस्थितियों और बहुआयामी पद्धतियों का विविध अनुभवों की रचना करने में महत्त्व।*
- *सामाजिक-आर्थिक संदर्भ और विद्यार्थी की पहचान।*
- *एक समर्थ शिक्षक-विद्यार्थी संबंध।*
- *माता-पिता और समुदाय की भूमिका एवं उनके लिए समुचित स्थान।*

शिक्षण-अधिगम सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकें

वर्तमान में लगभग देश के सभी स्कूलों की कक्षाओं की कार्यशैली पूरी तरह पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर करती है। परिणामस्वरूप पाठ्यपुस्तकों के महत्त्व का दायरा व्यापक होना निश्चित है। *ज़रूरत केवल एक पुस्तक की नहीं बल्कि शिक्षण-अधिगम पाठ्य सामग्री के एक पैकेज की है जो बच्चे को सक्रिय शैक्षिक गतिविधियों में व्यस्त रख सके। इस तरह पाठ्यपुस्तकें इस पैकेज का एक अंग होंगी, न कि अकेली शिक्षण सामग्री। इस प्रकार छोटे समूहों और स्कूल स्तर के लिए विकसित एवं सहायक सामग्री सहित बड़ी संख्या में इस पैकेज को जनपद स्तर से लेकर राज्य स्तर तक विकसित करने की ज़रूरत है। बड़ी संख्या में सभी प्रकार के अनुमोदित गुणवत्तापूर्ण वैकल्पिक टी.एल.एम. पैकेज की उपलब्धता अध्यापकों के चुनाव को विस्तृत करेगी।*

मूल्यांकन

शिक्षा में मूल्यांकन हमेशा क्रियान्वयन और उद्देश्यों से जुड़ा रहता है। अपने आप में यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवता के हित के लिए कार्यप्रणाली का निर्धारण करती है और बदलाव के प्रस्ताव रखती है। अगर हम मानते हैं कि बेहतर और सार्थक जीवन में शिक्षा का अहम योगदान है, तो वर्तमान मूल्यांकन की प्रक्रिया जो बहुत सीमित योग्यताओं का ही आकलन कर पाती है, एक व्यक्ति की निजी क्षमताओं के विकास को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ है।

सार्थक शैक्षिक बदलाव की दिशा में परीक्षा व्यवस्था का नवीनीकरण या उसका पुनरीक्षण एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा। इसके अतिरिक्त निरंतर और व्यापक मूल्यांकन के प्रभावी नमूनों के लिए सभी संबंधित व्यक्तियों को अपनी सामूहिक सोच सामने रखनी होगी। वे सभी, जैसे बच्चे, अध्यापक, अभिभावक, उच्च शैक्षिक संस्थान और नियोक्ता इस बारे में सोचें कि क्या जाँचा जा रहा है।

वर्तमान व्यवस्था में सुधार हेतु सुझाव

- *अधिगम के हर पहलू में श्रेष्ठता के लिए संघर्ष, खासकर सामग्री लिखने में, काम सुधारने में, विद्यार्थियों को प्रगति की देख-रेख में और उनके प्रश्नों पर प्रतिक्रिया देने में।*
- *परीक्षा और मूल्यांकन का डर दिखाए बिना पुनरवलोकन और सुधार के अवसर लगातार उपलब्ध होने चाहिए। अंक काटना विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने का विकल्प नहीं हो सकता।*
- *सीखने के अनुभव का खुद का भी परीक्षण होना चाहिए न केवल उसके परिणाम का। विद्यार्थी अपने अनुभवों की संपूर्णता पर बात करके खुश होते हैं और इस जानकारी को अधिगम व्यवस्था सुधारने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। विद्यार्थी को अपने खुद के अधिगम के अनुभवों का मूल्यांकन करने में सक्षम होना चाहिए, व्यक्तिगत रूप से भी और एक समूह के हिस्से के रूप में भी।*

राष्ट्रीय फोकस समूह

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें

के सदस्यों के नाम

श्री रोहित धनकर (अध्यक्ष)
निदेशक
दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, खोनागोरियाँ रोड
पो.-जगतपुरा, जयपुर-302025
राजस्थान

डा. कमला मेनन
प्राचार्य
मिरांबिका फ्री प्रोग्रैस स्कूल
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110016

प्रो. अनीता रामपाल
मौलाना आज़ाद सेंटर फॉर एलीमेंट्री एंड सोशल एजुकेशन,
केंद्रीय शिक्षा संस्थान
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110 007

प्रो. राजेंद्र भाटिया
अध्यक्ष
सांख्यिकी एवं गणित इकाई, भारतीय सांख्यिकी संस्थान
7-शहीद जीत सिंह मार्ग
नयी दिल्ली-110016

डॉ. गायत्री देवी दत्त
निदेशक
दक्षिण भारत अंग्रेज़ी क्षेत्रीय संस्थान
ज्ञानभारती कैंपस
बेंगलुरु-560056
कर्नाटक

प्रो. संदीप पोनाला
अधिष्ठाता
शिक्षा संकाय, उस्मानिया विश्वविद्यालय
12-13-677-12, कीमती कॉलोनी
गली नं.-1, लेन नं.-1
तरनाका, सिकंदराबाद-500017
आंध्र प्रदेश

डॉ. विपरालौ कैज़ी
निदेशक
राज्य शैक्षिक अनुसंधाान एवं प्रशिक्षण परिषद्
कोहिमा-797001
नागालैंड

डॉ. जानकी राजन
निदेशक
एस.सी.ई.आर.टी., वरुण मार्ग
डिफेंस कालोनी
नयी दिल्ली-110 024

श्रीमती जयश्री आचार्य
डी-4-1, एम.एस.फ्लैट्स
सेक्टर-13, आर.के. पुरम्
नयी दिल्ली-110022

डा. ज्योत्सना झा
74-विजय लक्ष्मी अपार्टमेंट्स
98, इंद्रप्रस्थ एक्स्टेंशन
दिल्ली-110092

श्रीमती प्रियदर्शिनी कछवाहा
उप-प्राचार्य
भारतीय विद्याभवन विद्याश्रम विद्यालय
ओ.टी.एस. के सामने
के.एम. मुंशी मार्ग
बजाज नगर, जयपुर
राजस्थान

श्री प्रकाश ब्रूते
प्लॉट न.. 5, ''मैत्रा''
डॉ. अंतरोलिकर नगर संख्या-3
'किनारा' होटल के पीछे
होटगी रोड, शोलापुर-413003
महाराष्ट्र

डॉ. संध्या परांजपे (सदस्य सचिव)
प्रारंभिक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110 016

अनुवाद सहयोग

सुश्री लतिका गुप्ता, *सलाहकार,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

डॉ लता पांडेय, *रीडर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

सुश्री फरहत रिज़वी, राष्ट्रीय सहारा इंडिया कॉम्पलेक्स, सहारा समय वीकली, सी-1234, सेक्टर-11, नोएडा, उ.प्र.

डॉ. राधा, सेक्टर, 4/276, चिंरजीव विहार, गाज़ियाबाद 201002

श्री मनोज मोहन, पी.डी. 64/सी., पीतमपुरा, दिल्ली 110088

डॉ. रंजना अरोड़ा, *रीडर,* पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110016

विषयसूची

सार-संक्षेप ...iii

'पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें' पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के सदस्यों के नाम ...viii

1. परिचय : संभावनाओं की खोज ...1

2. एक नीतिगत परिप्रेक्ष्य ...3

2.1 समानता के लिए पाठ्यचर्या? ...3

2.2 एकीकरण और लचीलेपन की विवादित संकल्पनाएँ ...5

2.3 'पाठ्यचर्या' के संकुचित आशय और 'केंद्रिक पाठ्यचर्या के परे' ...6

2.4 पाठ्यपुस्तक की भूमिका और 'राष्ट्रीय मानदंड' ...7

2.5 विकेंद्रित पाठ्यचर्या विकास के समर्थन में ...9

3. प्रत्ययात्मक क्षेत्र का मानचित्रण : पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक की धारणाएँ ...10

3.1 मौजूदा परिदृश्य ...10

3.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा और संक्रियात्मक परिभाषाएँ ...10

3.3 क्रियान्वयन की व्याख्या ...13

4. समूह की केंद्रीभूत स्थिति ...20

4.1 प्रस्ताव ...20

4.2 पाठ्यचर्या के घटकों पर समूह के विचार ...20

4.2.1 शिक्षा के सामान्य लक्ष्य ...20

4.2.2 स्तरानुसार शिक्षा के सामान्य उद्देश्य ...23

4.2.3 विषयवस्तु के चुनाव और संगठन के सिद्धांत ...24

4.2.4 शिक्षण-अधिगम के तरीके और कक्षायी पद्धतियाँ ...31

4.2.5 शिक्षण-अधिगम सामग्री और पाठ्यपुस्तकें ...36

4.2.6 मूल्यांकन ...38

संदर्भ-ग्रंथ सूची ...42

1. परिचय : संभावनाओं की खोज

मैंने अपने जीवन को खत्म करने का निर्णय ले लिया है क्योंकि परीक्षाओं का दबाव मुझ पर बहुत बढ़ रहा है। मैं और बर्दाश्त नहीं कर सकता। सुधांशु ने 4 मार्च, 2005 को आत्महत्या करने से पहले एक पत्र में लिखा। शिक्षा जिसे उम्मीद की किरण जगानी चाहिए, जीवन की सार्थकता सिखानी चाहिए, जीवन को सही रूप देने के लिए क्षमताओं का विकास करना चाहिए वह अकसर ही जानलेवा बन रही हैं और बहुत कम लोगों को समर्थ बना पा रही हैं। परीक्षाओं में बहुत अच्छे अंकों से पास होने वालों में भी ज़्यादातर लोग जीवन को सिर्फ़ एक ऐसी खतरनाक दौड़ की तरह देखने लगते हैं जिसमें जीतना ही उनके बने रहने को सुनिश्चित करता है। आत्महत्या का कदम उठाने वाला वह अभागा बच्चा जिस विद्यालय में पढ़ता था उस विद्यालय की प्राचार्या बुरी तरह हक्की-बक्की एवं परेशान थीं। उन्होंने कहा *हमने तो कई कार्यशालाएँ आयोजित कीं जिनमें विद्यार्थियों को परीक्षा के तनाव से जूझना सिखाया गया। कोई नहीं कह सकता कि आजकल के विद्यार्थियों के दिमाग में क्या चलता रहता है।* प्राचार्या यह बिल्कुल नहीं समझ पा रही थीं कि इस समस्या के कारण तथा इससे छुटकारा पाने के उपाय, दोनों की ही तलाश एक अलग स्तर पर करनी पड़ेगी । उन विचारों और आदर्शों पर पुनः सोच-विचार करने की ज़रूरत है जो तेज़ी से समाज में प्रभावशाली होने की होड़ में शामिल हैं और शिक्षा में भी प्रबल होते दिख रहे हैं। इस समस्या का हल कार्यशालाओं द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता बल्कि यह शिक्षा की प्रक्रिया और विद्यालयों के प्रति एक सुनियोजित एवं समर्थ दृष्टि से ही संभव हो सकेगा।

इस दिशाहीन शिक्षा व्यवस्था में बच्चों को बड़ी निर्दयता से कुछ ज़्यादा ही पढ़ाया जाता है। यह भारत में विद्यालयी शिक्षा का एक चेतावनीपूर्ण पक्ष है। दूसरा भी इसी के समान चेताने वाला पक्ष है कि लाखों बच्चे बिना विद्यालय में पढ़े ही बड़े हो रहे हैं और जो विद्यालय पहुँचते भी हैं वे कई बार बिना कुछ सीखे ही विद्यालय छोड़ भी देते हैं।

आज कक्षाओं का एक संक्षिप्त-सा सर्वेक्षण ही एक उत्सुक अवलोकनकर्ता को यह समझा देगा कि हमारे अधिकांश विद्यालयों में शैक्षणिक पद्धति के सबसे उल्लेखनीय लक्षण हैं - नीरस दिनचर्या, ऊबे हुए शिक्षक और विद्यार्थी एवं रटंत विद्या। पाठ्यचर्या (curriculum), पाठ्यक्रम (syllabi) एवं पाठ्यपुस्तकें (textbooks) विकसित करने के लिए आज की पद्धतियों पर किया गया अध्ययन कोई बहुत ज़्यादा प्रोत्साहित करने वाली तसवीर नहीं खींचता। आज की स्थिति पर हुआ अध्ययन न तो इस नीरसता को हटाने की उम्मीद जगाता है और न ही शिक्षा के आदर्श का एक सार्थक अनुसरण कर पाने की आशा बँधाता है। यह मुख्यतः ऐसा एकपक्षीय तंत्र है जिसमें ऐसी शिक्षा को बढ़ावा मिलता है जहाँ बच्चों को ज़िम्मेदार, समर्थ, संवेदनशील एवं विचारशील बनाने का प्रयास नहीं है बल्कि मानकीकरण पर ज़ोर है। बच्चों को एक मानकीकृत उत्पाद की तरह उत्पन्न किया जाता है जो बस विशिष्ट तरह की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर पाएँ।

ऐसा नहीं है कि कक्षा की इस उदासीनता को चुनौती नहीं दी गई। कई सरकारी एवं गैर-सरकारी क्षेत्रों में इस तरह के बहुत सारे उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ अलग प्रकार की पाठ्यचर्या की समझ विकसित की गई है जिसके परिणामस्वरूप कक्षा-पद्धतियों एवं बच्चों के अधिगम के बहुत ही अच्छे परिणाम मिले। ये अनुभव हमें नयी संभावनाओं की खोज के लिए उदाहरण देते हैं। एक स्वतंत्र शिक्षक की, बच्चों की सार्थक भागीदारी की, उत्साहपूर्ण कक्षाओं की एवं निरंतर बढ़ते अधिगम के कुछ नमूनों की झलक प्रस्तुत करते हैं। इस आधार पत्र द्वारा एक ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे विद्यालयों एवं शिक्षकों के पास ज़्यादा से ज़्यादा विकल्प हों और उन विकल्पों को एक व्यापक स्तर तक ले जाने में बच्चों एवं समुदाय की उत्कृष्ट भूमिका हो।

वर्तमान में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए जो पद्धति अपनाई गई है उसकी विशेषता है कि वह शिक्षा के लक्ष्य, अधिगम की ज़रूरतों एवं बच्चों के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित न होकर परीक्षा व्यवस्था की ज़रूरतों एवं तरीकों से निर्धारित होती हैं। पाठ्यचर्या शब्द के विभिन्न आशय हो सकते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि इस्तेमाल करने वाला एक ही व्यक्ति अलग संदर्भों में इस शब्द का

अलग आशय के साथ इस्तेमाल करता है। इसका हवाला ज़्यादातर पढ़ाई की योजना की तरह दिया जाता है जिसमें विभिन्न विषयों को पृथक् रूप से देखा जाता है और बच्चों द्वारा याद करने के लिए विषय-ज्ञान को संबंधित पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता और उसी एकमात्र पाठ्यपुस्तक को ही पाठ्यचर्या से जुड़ी सभी ज़रूरतों का प्रतीक मान लिया जाता है और पूरे देश में वही पाठ्यपुस्तक इस्तेमाल होती है। यद्यपि नीतिगत दस्तावेज़ों, पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं कार्यक्रमों के प्रस्तावों में पाठ्यचर्या की सामग्री का ज़िला स्तर तक विकेंद्रीकरण करने की बात की गई है लेकिन इस दिशा में शायद ही कोई कदम उठाया गया है । इतने सालों में जो थोड़े बहुत बदलाव हुए भी हैं वे सतही ही हैं या फिर कुछ बहुत ज़्यादा दोहराए जाने वाले बदलाव हैं जिसमें विभिन्न केंद्रीय संस्थाओं या अन्य समूहों के दबाव के कारण दो तीन नए विषयों या मुद्दों को शामिल कर लिया गया।

आज पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने की पद्धति की जो रूपरेखा है वह पूर्णत: उन राष्ट्रीय नीतियों से प्रेरित है जो सत्तर के दशक की शुरुआत में बनाई गई थीं। सत्तर के शुरुआती दौर में ही लगभग सभी राज्यों ने विद्यालयी शिक्षा में 10+2 का ढाँचा अपना लिया था। कुछेक राज्यों ने यह रूपरेखा नहीं अपनाई और वहाँ +2 का स्तर आज भी कॉलेज शिक्षा द्वारा प्रबंधित एवं विश्वविद्यालय द्वारा नियंत्रित है। 10+2 का ढाँचा शिक्षा में उल्लेखनीय असमानताओं को घटाने के लिए तथा पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं परीक्षा में एक सामंजस्य बैठाने के लिए अपनाया गया था। राज्यों को प्रोत्साहित किया गया था कि वे स्वायत्त परीक्षा मंडल स्थापित करें जो सेकेंडरी एवं सीनियर सेकेंडरी स्तर पर पाठ्यचर्या परीक्षण-विधि विकसित करे। हालाँकि परीक्षा परिषदों की भूमिका एवं कार्यों में बहुत विविधता है और उनके काम करने के तरीके में भी अंतर है, फिर भी उनको मात्र परीक्षा संचालन एवं प्रमाण-पत्र देने वाली संस्थाओं की तरह ही देखा जाता है। परीक्षा संचालन एवं प्रमाण-पत्र वितरण परिषदों की मुख्य ज़िम्मेदारी बन कर रह गई है। परीक्षा की अभिरचना एवं प्रकृति, पाठ्यचर्या के लिए बंधनकारी दिशा बन चुकी है जबकि होना इसका उलटा चाहिए। पाठ्यचर्या को अनुमोदित करने वाली कुछ संस्थाएँ भी राज्यों में दिखाई देती है। परंतु रुचिकर बात तो यह है कि इन संरचनाओं की प्रकृति पाठ्यचर्या की प्रकृति को प्रभावित करती है। जबकि पाठ्यचर्या की प्रकृति के अनुरूप संरचनाओं की आवश्यकता है।

कुछेक राज्यों को छोड़कर प्राथमिक शिक्षा या पहले सात-आठ सालों की शिक्षा को राज्य शिक्षा परिषदों के कार्य क्षेत्र से बाहर ही रखा गया है। राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (कुछ राज्यों में इनका नाम भिन्न है) भी उसी समय गठित हुई जब शिक्षा परिषद् गठित हुई थी। अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों का गठन पहले से मौजूद शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को मिला कर किया गया था। इनकी मुख्य ज़िम्मेदारी प्राथमिक कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तकें एवं पाठ्यक्रम बनाना है। विभिन्न राज्यों की राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों की कार्यप्रणाली कई मामलों में भिन्न है। राष्ट्रीय स्तर पर गठित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का कार्य, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाकर राज्यों को मार्गदर्शन देना है। राज्य स्तर पर तथा प्रारंभिक एवं सेकेंडरी शिक्षा में काम करने वाले लोगों की क्षमताओं का विकास करना है।

विविध कारणों से प्राथमिक शिक्षा में प्रयोग करने की संभावना आनुपातिक रूप में ज़्यादा रही है इसीलिए सृजनात्मक अनुभव भी प्राथमिक स्तर पर ही ज़्यादा मिलते हैं। कुछेक उदाहरण हैं जिनमें राज्यों ने पाठ्यचर्या को स्वयं परिभाषित करने का प्रयास किया और उसी के अनुसार पाठ्यपुस्तकें बनाईं और शैक्षणिक सामग्री विकसित की। जैसे डी.पी.ई.पी. के तहत केरल ने नई पाठ्यचर्या के प्रस्तावों को अपनाया, प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकें और शिक्षक सहायक सामग्री तैयार करने की विधि भी अपनाई। जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना ने निश्चय ही सभी राज्यों को इस तरह की गतिविधियों के लिए प्रोत्साहित किया था लेकिन जिस प्रबलता एवं गहनता से

विभिन्न राज्यों ने इस दिशा में पहल की उसमें बहुत अंतर है। जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना के क्रियान्वयन से बहुत पहले मध्य प्रदेश की एक स्वयंसेवी संस्था 'एकलव्य' ने प्राथमिक शिक्षा के लिए प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (प्रशिका) के तहत एक नया प्रस्ताव रखा था। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के सरकारी विद्यालयों में किए गए अध्यापन के वास्तविक अनुभवों के आधार पर विकसित किया गया था। आगे चलकर यह उन सभी के लिए एक चर्चा का बिंदु बना जो मध्य प्रदेश में "सीखना-सिखाना" कार्यक्रम के तहत नयी संभावनाओं की खोज में जुटे। राजस्थान में लगभग दो दशकों से 'दिगंतर' नाम की संस्था एक भिन्न पाठ्यचर्या का अनुसरण कर रही है। 'दिगंतर' जयपुर के सीमांत इलाकों में निचले आर्थिक-सामाजिक स्तर से आने वाले बच्चों के लिए कुछ विद्यालय चलाती है। 'दिगंतर' बहुत ही सक्रियता से अपने अनुभवों एवं संकल्पनाओं को सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ बाँटती रही है। मध्य प्रदेश में डी.पी.ई.पी. के अंतर्गत वैकल्पिक शिक्षा के लिए जो पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं शिक्षण पद्धति तैयार हुई वह 'दिगंतर' के दर्शन एवं अनुमोदन पर आधारित थी। कर्नाटक के कई ज़िलों ने पाठ्यपुस्तक रहित शिक्षा की प्रणाली अपनाई जो गतिविधियों की एक लंबी शृंखला पर आधारित थी और इस पद्धति का विकास आंध्र प्रदेश की एक स्वयंसेवी संस्था "ऋषि वैली" के अनुभवों के अनुसार था।

इन सभी उदाहरणों की मौजूदगी उस ज़रूरत और उन परिस्थितियों की ओर इशारा करती है जिनकी रोशनी में यह समझ बनी कि प्रचलित पद्धतियाँ न ही पर्याप्त थीं और न ही उपयुक्त। यह चिंतन करने की ज़रूरत है कि कहीं मौजूदा नीतियाँ और पाठ्यचर्या के ढाँचे ही अस्पष्ट उद्देश्यों को सामने रखते हैं और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लचीले और उपयुक्त पाठ्यचर्या उपागमों के विकास को सहज करते हैं। मानव दर्शन, लोकतांत्रिक शासन एवं अधिगम के सिद्धांतों के चश्मे को पहन कर यह देखना होगा कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को लेकर कैसी संकल्पनाएँ हैं और कैसी होनी चाहिए? पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं के सिद्धांतों को कैसे सबसे अच्छी तरह परिभाषित किया जा सकता है। जिससे ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया सुलभ हो जो प्रोत्साहित करने वाली हो एवं ज़िम्मेदार, विवेकपूर्ण और सेवाभावी इंसान बनाए, जो ऐसे समाज की रचना कर पाएँ जिसमें समानता, न्याय, लोकतंत्र एवं बहुवादिता के मूल्यों को बढ़ावा मिले। यह आधार-पत्र संभावनाओं की खोज के जरिए इसी दिशा में एक प्रयास है जिससे शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को ज़्यादा से ज़्यादा विकल्प मिलें। जैसा कि हाल ही में विद्यालय से उत्तीर्ण हुए एक विद्यार्थी ने इस समूह के एक सदस्य से कहा, *''बच्चों को सोचने की छूट हो और शिक्षक उसी प्रकार पढ़ाए जैसा कि वे उपयुक्त समझते हों।''*

2. एक नीतिगत परिप्रेक्ष्य

2.1 समानता के लिए पाठ्यचर्या?

शिक्षा के द्वारा समानता की उपलब्धि के प्रति जो वचनबद्धता है उसे स्वतंत्र भारत के नीतिगत दस्तावेज़ों द्वारा बिना किसी संदेह के लगातार गंभीरतापूर्वक व्यक्त किया गया है, जिसमें विद्यालयी शिक्षा के आयोगों की रपट एवं 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और कार्यकारी योजना 1992 भी शामिल हैं। सेकेंडरी शिक्षा आयोग की रपट (1952) ने लोकतांत्रिक नागरिकता को बढ़ाने में विद्यालयों की भूमिका पर यह कहते हुए ज़ोर दिया था कि "लोकतंत्र विश्वास एवं प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा के मूल्य पर टिका हुआ है, जिसमें 'सहजात महत्त्वता' को आर्थिक, सामाजिक या जातीय आधार पर छुपाया नहीं जा सकता।" (पृष्ठ 20)। जैसा कि विभाजन से जूझते हुए स्वतंत्र भारत के पहले शिक्षा आयोग ने विद्यालयों से यह उम्मीद रखी कि वह देशभक्ति एवं सहयोग की भावना की नींव "दिमाग के खुलेपन एवं हृदय की विशालता" पर रखेंगे न कि विभिन्न आस्थाओं, विचारों, रुचियों एवं अनुभवों के एकीकरण के उत्पीड़क प्रयास पर जो संभवत: दक्षता को एक संकीर्ण एवं निम्न स्तर पर देख पाते हैं और अनिवार्य रूप से जीवन को अशक्त करते हैं। वे इंसान की मुक्त अभिव्यक्ति को रोकते हैं। इस रपट ने शिक्षा में ऐसे मौकों की माँग की जो व्यवहार में सामाजिक न्याय के मनोभाव को परिभाषित

कर सकें। *"इस विश्वास से प्रेरित कि सामाजिक उद्देश्य इस बात के लिए संघर्ष करते हैं कि लोकतंत्र में जीवन सिर्फ़ अपने लिए ही नहीं है बल्कि यह आह्वान है एक ऐसे कठिन प्रयास का जिसमें सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध हों और एक ऐसी लड़ाई जो कि वंचित समूहों के न्याय के लिए लड़ी जाए।" (पृ.21)*

अगले शिक्षा आयोग (भारत सरकार, 1966) ने राष्ट्रीय विकास की समाजवादी एवं लोकतांत्रिक कल्पना को केंद्र बिंदु बनाया, जिसमें स्पष्ट रूप से "शिक्षा में समानता को ज़्यादा से ज़्यादा प्रतिभा के विकास के लिए इस्तेमाल करने" का विचार रखा गया था। इसके साथ यह चेतावनी थी कि इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें छोटे सामाजिक समूहों ने शिक्षा का इस्तेमाल अपने शासन के लाभ और अपने अधिपत्य को बरकरार रखने के औज़ार के रूप में किया है" (भाग-1.16)। इस रपट ने बहुत ज़ोर देकर 'सामान्य शिक्षा प्रणाली' की अनुशंसा की और उसे उपयुक्त बताया (भाग-1.36)। रपट ने यह घोषणा की, ''यह शिक्षा व्यवस्था की ज़िम्मेदारी है कि वह विभिन्न सामाजिक श्रेणियों और समूहों को पास लाए और एक समतावादी और समाकलित समाज का सृजन हो। लेकिन ऐसा करने की बजाय वर्तमान में शिक्षा खुद सामाजिक अलगाव की ओर अग्रसर है और श्रेणी विभाजन को बढ़ावा दे रही है... इसीलिए यह स्थिति अलोकतांत्रिक है और समतावादी समाज की कल्पना से उसका सामंजस्य नहीं है। आम आदमी के बच्चे एक निचली कोटि की शिक्षा पाने को बाध्य हैं... जबकि आर्थिक रूप से संपन्न अभिभावक अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा खरीद लेते हैं। यह स्थिति केवल गरीब बच्चों के लिए ही नहीं बल्कि धनाढ्य परिवारों के बच्चों के लिए भी खराब है। यह विभाजन अमीर वर्ग के बच्चों को कुछ अल्पकालिक फ़ायदा दे पाता है जब तक कि वह अपनी स्थिति को मजबूत कर पाए... धनाढ्य परिवार अपने बच्चों को पृथक् करके गरीब बच्चों के जीवन और अनुभवों से वंचित रखते हैं जिससे बच्चे जीवन की सच्चाई के संपर्क में नहीं आ पाते। सामाजिक संसाधन तो कमज़ोर होता ही है साथ ही अमीर वर्ग के बच्चों की शिक्षा भी अधूरी और अपूर्ण होती है'' (भाग-1.36, 1.37)। इसमें "पड़ोस में स्कूल का प्रस्ताव रखा गया जिससे प्राधिकृत, अमीर एवं शक्तिशाली वर्ग सार्वजनिक शिक्षा में रुचि ले और उसका जल्द सुधार हो पाए" (भाग-10.19)।

आगे 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इसका समर्थन किया और यह सुझाव दिया कि "एक दिए हुए स्तर तक सारे विद्यार्थियों को समान गुणवत्ता वाली शिक्षा मिले चाहे वे किसी भी जाति, लिंग, संप्रदाय या स्थान के हों" (भाग-3.2)। शिक्षा नीति के पुनरवलोकन के लिए गठित राममूर्ति कमेटी (1992) की रपट में भी ऐसी शिक्षा के प्रति वचनबद्धता उजागर हुई जो विषमता को हटाकर समानता को बढ़ावा दे: ''समानता को बढ़ावा देने के लिए, यह ज़रूरी है कि न केवल पहुँच/प्रवेश में बराबर के मौके मिलें बल्कि सफलता के लिए ज़रूरी परिस्थितियों में भी समान अवसर मिलें। साथ ही, सभी शिक्षा संस्थाओं में अंतर्निहित समानता पर जागरूकता भी एक मूल पाठ्यचर्या द्वारा पैदा की जाए। इसका उद्देश्य पक्षपातों एवं मनोग्रंथियों को दूर करना है जो सामाजिक वातावरण एवं जन्म के संयोग से संचारित हो जाती हैं" (भाग-3.6)। इस कमेटी ने यह सुझाव दिया कि सरकारी विद्यालयों का गुणवत्ता सुधार द्वारा वास्तविक पड़ोस के विद्यालयों में रूपांतरण कर दिया जाए और निजी विद्यालयों में भी पहुँच सुलभ हो जाए। "अब नयी नीति निजी विषमताओं को दूर करने और शिक्षा के समान अवसर पर समानता से वंचित लोगों की विशिष्ट ज़रूरतों पर विशेष ध्यान की आवश्यकता पर बल देगी" (भाग-4.1)। ऐसा भी हुआ है कि बहुत ही कुशल नवोदय विद्यालयों के अन्यायपूर्ण कार्यक्रम पर अपनी शंका जताने के बावजूद यह नीति आने वाली चीज़ों की दिशा नहीं बदल सकी।

आज की स्थिति में सरकारी शिक्षा ज़्यादा गैर बराबर और असमान हो चुकी है क्योंकि गरीबों के लिए कम खर्चे वाले गुणवत्ता में कमजोर ''शिक्षा के केंद्रों'' और 'वैकल्पिक विद्यालयों' की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इसके अलावा व्यावसायिक शिक्षा अभी भी सबसे कम माँग में है क्योंकि उसको ''कम योग्य'' के लिए उचित समझा जाता है, जबकि गरीब परिवार यह निराशा जाहिर करते हैं कि विद्यालय उनके

बच्चों को पारिवारिक व्यवसाय एवं जीविकोपार्जन से दूर कर देता है। यह राममूर्ति कमेटी (1992) के उस सुझाव के बावजूद हुआ है जिसमें उन्होंने संयुक्त पाठ्यचर्या की बात कही जिसमें व्यावसायिक एवं गैर व्यावसायिक दोनों अंग शामिल हों, जिससे काम और विद्यालय के बीच की दूरी घटे। प्रस्ताव में दोनों अंगों के विभिन्न विकल्पों को भिन्न अनुपात में रखने की बात थी। उसमें कहा गया कि *विद्यालयी शिक्षा के व्यवसायीकरण को समानता, सामाजिक न्याय के संदर्भ में देखना चाहिए, वह आज की स्थिति के प्रतिकूल होगा जिसमें व्यावसायिक शिक्षा को 'कम-सुयोग्य' और 'कम-सौभाग्यशालियों' के लिए समझा जाता है* (भाग 2.2.6)।

2.2 एकीकरण और लचीलेपन की विवादित संकल्पनाएँ

समानता के दर्शन को पाठ्यचर्या की रूपरेखा में ढालने की चुनौती अनुत्तरित रही है और ऐसा पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं की शृंखला (एन.सी.ई.आर.टी. 1975, 1988, 2000) से प्रतिबिंबित होता है। जिसमें दिए गए उम्मीद बाँधने वाले ऐसे कथन हमेशा ही उस संकल्पना के अनुरूप नहीं रहे जिससे एक लोकतांत्रिक और समता लाने वाली पाठ्यचर्या बन सके। सबसे पहली शंका और दुविधा 1975 में ''कॅरिकुलम फॉर टेन इयर्स'' नामक दस्तावेज़ में उभरी जिसमें कहा गया था, "हमारे देश में विद्यालयी पाठ्यचर्या पर विभिन्न जगहों से विविध तरह के दबाव होंगे क्योकि भारत बहुत विशाल है जिसमें भाषा, सामाजिक रीतिरिवाजों, तरीकों एवं लोकरीति की विविधता है और असमान आर्थिक विकास हुआ है। मापदंडों के एकीकरण एवं राष्ट्रीय अस्मिता के लिए यह ज़रूरी है कि एकसमान पाठ्यचर्या तैयार की जाए जोकि स्वीकृत मूल्यों एवं सिद्धांतों के व्यापक ढाँचे में निहित हो।'' (भाग-2.1)

उस समय जिसे अस्पष्ट रूप से ''मानकों का एकीकरण और राष्ट्रीय अस्मिता'' कहा गया था उस केंद्रीय सरोकार ने पाठ्यचर्या निर्माण में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति की सफ़ाई दी, उसका आधार प्रस्तुत किया। 1975 के पाठ्यचर्या के ढाँचे ने यह स्वीकार किया था कि राष्ट्र की ज़रूरतों, सपनों एवं जीवन की शिक्षा को संबोधित करने के लिए शिक्षा में 'अंदरूनी रूपांतरण' निहायत ही कठिन हो रहा था क्योंकि बच्चों की निरंतर बढ़ती संख्या से दबाव बढ़ रहे थे। लोगों के कठोर रुख एवं परंपरागत रवैए के कारण पाठ्यचर्या की रूपरेखा इन कमज़ोरियों को मूलभूत तरीके से हटा नहीं पाई। उद्देश्यों के कुछ व्यापक कथन बने थे, पर उन्होंने ऐसा कोई संकेत या सुझाव नहीं दिया जिससे पता चलता कि विविध सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चों की शिक्षा के दर्शन को पाठ्यचर्या में कैसे संबोधित किया जाए। वह दस्तावेज़ सीधे ही अध्यापन एवं विषयवस्तु की दिशा में अग्रसर हो गया।

पाठ्यचर्या में यह कभी नहीं कबूला गया कि बच्चे सक्रिय रूप से भाग लेकर अपने अनुभवों से सीखते हैं, सांस्कृतिक धरोहर से उनके अधिगम एवं विकास को आकार मिलता है जिसमें उनके समाज का सामाजिक एवं भौतिक दुनिया के बारे दृष्टिकोण भी शामिल होता है। इस बात को भी कभी संबोधित नहीं किया गया कि नीतिगत दस्तावेज़ों ने इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया था कि मौजूदा स्कूली शिक्षा देने का ढंग जिसमें पाठ्यक्रम का चुनाव भी शामिल है, पढ़ाने के तरीके एवं परीक्षाएँ बच्चों को अक्सर पढ़ाई से विमुख कर देती हैं और नियमित रूप से गैर समानता को पुनर्बल देती हैं। 1975 का दस्तावेज़ बच्चों की विविध ज़रूरतों को केवल ''प्रतिभाशाली बच्चों की विशेष ज़रूरतों, पिछड़े हुए बच्चों या अनौपचारिक शिक्षा'' से आने वाले बच्चों के संदर्भ में ही देखता गया। वास्तव में दस्तावेज़ का एक भाग 'द कोर कॅरिकुलम एंड बियोंड (केंद्रिक पाठ्यचर्या और उससे परे)' यहाँ चित्रित करता है कि कैसे विद्यालयों को मूल पाठ्यचर्या से आगे बढ़ने की ज़रूरत पड़ेगी जिससे उन विद्यर्थियों को 'अतिरिक्त निर्गम' दिए जा सकें जो अग्रिम इकाइयाँ पढ़ने के इच्छुक हों। इसी तरह कम सौभाग्यशाली विद्यालयों से या अनौपचारिक शिक्षा से आने वाले विद्यार्थियों को प्रतिविधिक या उपचारिक इकाइयों और थोड़े समय के लिए सहायता देने वाली इकाइयों की ज़रूरत पड़ेगी जिनकी व्यवस्था विद्यालयों को करनी पड़ेगी (भाग-2.15)।

2.3 'पाठ्यचर्या' के संकुचित आशय और 'केंद्रिक पाठ्यचर्या के परे'

'लचीलेपन' और 'विविधता' की संकल्पना में मूलभूत समस्या 'पाठ्यचर्या' की भूमिका को परिभाषित न कर पाने की योग्यता तथा व्यवस्था की अंतर्निहित सीमाओं से जुड़ी हुई है। पाठ्यचर्या से क्या समझा गया था? वह अनिवार्य रूप से एक निर्धारित मूल विषयवस्तु की तरह लगता था जिसे प्रचलित भाषा में सिलेबस - 'पाठ्यक्रम' और स्टैंडर्ड्स - 'मापदंड' कहा गया जोकि पढ़ाए जाने वाले विषयों में से निकले प्रकरणों की सूची के रूप में था जिसका मतलब 'प्रतिभाशाली की अभिवृद्धि या पिछड़े समूह के लोगों को उपचारी शिक्षा देना था।'

'पाठ्यचर्या' की सीमित समझ 1988 के दस्तावेज़ 'प्राथमिक एवं सेकेंडरी शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा,' में फिर से उजागर हुई। इस दस्तावेज़ ने 'केंद्रिक' को परिभाषित करने का प्रयास किया। परिभाषित करने के माध्यम को कहा गया - 'अधिगम के न्यूनतम स्तर (मिनीमम लेवल्स ऑफ़ लर्निंग-एम.एल.एल.)' (भाग-2.2)। इस संरूपण में कई समस्याएँ थीं पर यहाँ हम उन पर विचार नहीं करेंगे। यह बिंदु रखना काफ़ी होगा कि 'स्तरों' को बहुत व्यवहारवादी अर्थों में परिभाषित किया गया था और वे इस धारणा से निकले हुए थे कि अंतर 'स्तरों' की ऊँच-नीच में निहित है न कि अधिगम के विभिन्न तरीकों में। भाग 2.2 में हमने यह कथन पाया -

> उपचारिक एवं अभिवृद्धि कार्यक्रमों और सामग्री की रूपरेखा और परिचय में बहुत ही ऊँचे स्तर के लचीलेपन और स्थानीय पहल की कल्पना की गई थी। ऐसा न केवल राज्य शैक्षणिक अधिकारियों ने बल्कि विद्यालयों एवं शिक्षकों ने भी किया जिससे कुशाग्र एवं धीमी गति से सीखने वाले एक ही कक्षा के विद्यार्थियों की ज़रूरतों को संबोधित किया जा सके। फिर भी विभिन्न प्रक्रियाओं या एक जैसे तरीकों के लिए पाठ्यचर्या की कार्यप्रणाली में कोई लचीलापन या खुलापन नहीं है जिससे देश के विभिन्न भागों की शिक्षा में विषमता बढ़ेगी।

सच्ची बहुवादिता और लचीलेपन को संभव बनाने में व्यवस्था की अनिच्छा एवं 'पाठ्यचर्या' का बहुत ही प्रतिबंधित अर्थ स्पष्ट रूप से जाहिर हुआ जब राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने अपनी रपट 'शिक्षा बिना बोझ के' (भारत सरकार, 1993) को सामने रखा। समिति के कुछ सुझाव इस प्रकार थे:

> पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकें बनाने की प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण हो जिससे कार्यों में शिक्षकों की प्रतिभागिता बढ़े। विकेंद्रीकरण का आशय है राज्य स्तर पर, जिला स्तर के परिषदों या अन्य संबंधित प्राधिकारियों को, विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षकों को ज़्यादा स्वायत्तता मिले कि वे स्थानीय परिवेश से जुड़ी पाठ्यचर्या सामग्री के विकास में सक्रिय रूप से भागीदार बनें। सारे विद्यालयों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे पाठ्यचर्या के प्रत्येक पहलू में नवाचार करें जिसमें पाठ्यपुस्तकों के विकल्प और अन्य सामग्री भी शामिल है (सुझाव सं. 2 अ)। वे स्वयंसेवी संस्थाएँ जिनकी विशिष्ट प्रतिबद्धता शिक्षाशास्त्रीय नवाचार में है, चाहे वे औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा में हों, उनको ज़्यादा आज़ादी मिले। पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों के विकास एवं शिक्षक प्रशिक्षण में समर्थन एवं प्रोत्साहन मिले (सुझाव सं. 2 ब)।
>
> दिल्ली के बाहर अन्य राज्यों में जो केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से जुड़े विद्यालय हैं वह संभ्रात विद्यालयों की तरह मशहूर होते हैं। सी.बी.एस.ई. की पाठ्यचर्या सारे राज्य बोर्डों के लिए अनुकरणीय होती है जिससे ज़्यादातर बच्चों पर पाठ्यचर्या का भार बढ़ जाता है। इसीलिए यह समिति सुझाव देती है कि सी.बी.एस.ई. का अधिकार क्षेत्र केवल केंद्रीय विद्यालयों एवं नवोदय विद्यालयों तक सीमित रहे और बाकी सभी विद्यालय राज्य बोर्ड से संबंधित हों (सुझाव सं. 4)।

मंत्रालय ने शीघ्र ही एक समूह गठित किया जिसकी अध्यक्षता वाई.एन.चतुर्वेदी ने की। इस समूह में ज़्यादातर प्रशासनिक अधिकारी थे। इस समूह का काम था कि 'यशपाल कमेटी' के सुझावों के क्रियान्वयन की संभवता पर अपने विचार दे। इस समूह ने कमेटी के अधिकतर सुझावों का खंडन किया, और इस तरह की टिप्पणियाँ दीं जिससे शिक्षा को लेकर उनका अपना रूढ़िवादी नज़रिया एवं रपट के आशय को न समझने की कमी स्पष्ट हुई। असल में जहाँ-जहाँ कमेटी ने 'पाठ्यचर्या' शब्द का

इस्तेमाल किया समूह ने पाठ्यक्रम शब्द का इस्तेमाल करते हुए अपनी प्रतिक्रिया दी। जिससे ऐसा प्रतीत हुआ कि समूह दोनों शब्दों को एक दूसरे का पर्यायवाची मानता है। समूह ने उस बिंदु को भी छोड़ दिया जिसमें पाठ्यचर्या विकास में स्थानीय भागीदारी एवं स्वामित्व की बात थी साथ ही परीक्षण एवं प्रामाणिकता के महत्त्वपूर्ण पहलू की भी। समूह ने ज़्यादा से ज़्यादा बस यह मान लिया कि भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौगोलिक क्षेत्रों में अलग पाठ्यचर्या की ज़रूरत है पर वह भी राष्ट्रीय या राज्य संस्थाओं द्वारा ही बननी चाहिए।

उदाहरण के लिए ऊपर आए कमेटी के सुझाव संख्या 2 एवं 4 के जवाब में समूह ने कहा:

> समूह ने यह महसूस किया है कि राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर समितियों का आकार एक सीमा के बाद नहीं बढ़ाया जा सकता इसीलिए शिक्षकों की भागीदारी बढ़ाने का एक सार्थक तरीका होगा कि एन.सी.ई.आर.टी./ केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड/राज्य परिषद्/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् एक प्रारूप पाठ्यक्रम बना लें और समूह ने पाठ्यक्रम या पाठ्यपुस्तकें बनाने की प्रक्रिया के विकेंद्रीकरण का सुझाव नहीं दिया क्योंकि यह सुनिश्चित करना मुश्किल पाया गया कि *भारत की राष्ट्रीय अस्मिता एवं संयुक्त संस्कृति का कैसा प्रक्षेपण होगा। ऐसी स्थिति में देश के सारे भागों में न्यूनतम मानकों तक का पालन करना मुश्किल हो सकता है।* (पृष्ठ 5, विशेष जोर)
>
> हालाँकि समूह ने यशपाल कमेटी की इस बात पर समर्थन ज़ाहिर किया कि वर्तमान में कई पाठ्यपुस्तकें शहरी मध्यम वर्ग की जीवन-शैली को ही प्रबलता से दिखाती हैं। इसीलिए समूह ने सुझाव दिया... कि जिन राज्यों में भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक भौगोलिक क्षेत्र हैं, अलग और समानांतर पाठ्यपुस्तकें बना लें और उपयोग में लाएँ जिनके अधिगम के उद्देश्य एक ही हों। पाठ्यपुस्तकें बनाने वाली संस्थाओं को एक व्यवस्थित पुनरावलोकन की ज़रूरत है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि अगर पाठ्यपुस्तकों में कोई घिसी-पिटी या बेकार सामग्री आ गई हो तो वह हटा दी जाए (पृष्ठ. 6)।
>
> जहाँ तक केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का सवाल है वह पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए एन.सी.ई.आर.टी. पर बहुत ज़्यादा निर्भर करता है। एन.सी.ई.आर.टी. बहुत ही सही ढंग से देश में मौजूद मानकों को, विद्यार्थियों की क्षमताओं को एवं विकसित देशों के मानकों को ध्यान में रखती है। अगर एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों में कोई अनावश्यक सामग्री है, उसे निकाल देना चाहिए। हालाँकि *रिकार्ड में ऐसी कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है जिससे यह पता चले कि एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकें या केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम बोझिल है। अगर केंद्रीय विद्यालयों एवं नवोदय विद्यालयों के लिए केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्धता अच्छी है तो वह दूसरे विद्यालयों के लिए भी खराब नहीं हो सकती''* (पृष्ठ 10)।

2.4 पाठ्यपुस्तक की भूमिका और 'राष्ट्रीय मानदंड'

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) ने यह इंगित किया था कि उस समय की पाठ्यचर्या बहुत ''संकीर्ण, किताबी एवं सैद्धांतिक'' थी जिसमें पाठ्यक्रम का बोझ था और अनुपयुक्त पाठ्यपुस्तकें थीं। इस आयोग ने यह सुझाव दिया था कि पाठ्यचर्या को बहुत निश्चित सीमा वाले विषयों में नहीं बाँटना चाहिए, बल्कि विषयों में आपस में जुड़ाव हो, प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण विषयवस्तु हो ताकि वह विद्यार्थियों के जीवन को छू पाए। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य में एक शक्तिशाली समिति का गठन हो जो पाठ्यपुस्तकों का चयन करे, एवं उपयुक्त आधार बनाए। आयोग ने बल देकर कहा था कि "किसी भी अध्ययनीय विषय के लिए कोई एक पाठ्यपुस्तक निर्देशित नहीं होनी चाहिए, बल्कि मानकों पर खरी, सोची-समझी, परखी हुई पाठ्यपुस्तकों के सुझाव विद्यालयों को दे दिए जाएँ जिसमें से वे जो विकल्प चाहें चुन लें'' (पृष्ठ 83)।

अगले शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी विद्यालयी शिक्षा की खराब गुणवत्ता पर प्रकाश डाला। आयोग ने पाठ्यपुस्तकों की निम्न कोटि का कारण पाठ्यपुस्तकों की तैयारी एवं निर्माण में शोध की कमी को बताया और

उच्च श्रेणी के विद्वानों की अरुचि को भी दोषी ठहराया। आयोग ने राष्ट्रीय मानकों को परिभाषित करने की माँग की और केंद्रीय पाठ्यपुस्तकों का सुझाव दिया जो राष्ट्रीय मानकों के आधार पर हों। सुझाव था कि पाठ्यपुस्तक निर्माण राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर पर शुरू हो और राज्य स्तर पर भी संस्थाएँ स्थापित हों। पीछे मुड़ कर देखें तो हम पाते हैं कि पाठ्यपुस्तकों की समस्यात्मक भूमिका औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था से शुरू होकर आज तक चल रही है और आज तो इस भूमिका ने विद्यालय एवं कक्षा में एक अतिपवित्र स्थान पा लिया है और 'पाठ्यचर्या' एवं पाठ्यक्रम की भूमिका को दरकिनार कर दिया है। यह स्थिति और भी ज़्यादा मजबूत हो गई जब यह उम्मीद जताई गई कि राष्ट्रीय स्तर पर बनाई पाठ्यपुस्तकें राष्ट्रीय मानकों को और अधिक चिह्नित कर पाएँगी।

> इन (राष्ट्रीय) मानकों की परिभाषा एवं इनके व्यावहारिक क्रियान्वयन की व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करके सुलभ बनाया जाएगा। *ऐसी पाठ्यपुस्तकें अपेक्षित मानकों की उपलब्धि को किसी पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम के मुकाबले कहीं ज़्यादा चिह्नित कर पाएँगी।* इन पाठ्यपुस्तकों का विद्यालयों में व्यावहारिक इस्तेमाल ही सबसे सही तरीका है स्तर ऊँचा करने का और देश के विभिन्न भागों में शिक्षण को तुलनात्मक स्तर पर लाने का। गणित और विज्ञान जैसे विषयों में तो स्थानीय विभिन्नता की ज़्यादा गुंजाइश है ही नहीं साथ ही देश के सभी भागों में एक जैसी पाठ्यपुस्तकें लागू करना न केवल संभव है बल्कि कई कारणों से ऐच्छिक भी है ... इतिहास एक और कठिन विषय है, खासकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय अखंडता के नजरिए से। इस विषय पर अच्छी तरह से लिखी हुई प्रमाणिक पाठ्यपुस्तकें शिक्षक की बहुत सहायता कर सकती हैं। *अभी शायद ही ऐसी कोई सामान्य किताब है जिसे भारत में सभी विद्यार्थी पढ़ते हों और यही कारण है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय अखंडता में बहुत थोड़ा योगदान दे पाती है।* (भाग 9.19)

इस समान पाठ्यपुस्तक की धारणा को लेकर सारे देश में समस्या है, चाहे विज्ञान की बात हो या इतिहास की। खासकर आज, (चालीस साल बाद) जब बाल विकास और शिक्षाशास्त्र की ज़्यादा गहन समझ हमें दर्शाती है कि अधिगम तब होता है जब 'पाठ्यचर्या' की विषयवस्तु बच्चों के अनुभवों और सांस्कृतिक ज्ञान के संदर्भ में प्रासंगिक हो, चाहे वह ज्ञान पौधों, जानवरों, मनुष्य या प्रक्रियाओं का हो। हालाँकि उस समय का यह सुझाव श्रेष्ठ 'राष्ट्रीय' प्रतिभा को विद्यालयी शिक्षा में सुधार लाने के लिए योगदान हेतु आकर्षित करने की आवश्यकता के मद्देनज़र दिया हुआ प्रतीत होता है। निश्चय ही, शिक्षा आयोग ने राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकें विकसित करने की प्रक्रिया को क्षमता विकास में सहयोगकारी माना और माना कि ''कुछ अन्य केंद्र गतिविधियाँ शुरू करने के लिए प्रेरित होंगे और इसी प्रकार का उत्साह राज्य स्तर पर भी देखने को मिलेगा'' (भाग 9.20)। "यहाँ तक कि उन क्षेत्रों में जहाँ राष्ट्रीय पुस्तकें उपलब्ध हैं, राज्यों द्वारा उठाए गए स्वतंत्र कदम एक-दूसरे को तथा स्वयं केंद्र को भी प्रेरित करेंगे''। इसके लिए इसने "एक पृथक् संस्था की संस्तुति की जिसका एक स्वायत्त एवं व्यावसायिक आधार हो तथा जो शिक्षा विभाग के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़कर कार्य करे" (9.21)।

इसके अलावा, आयोग द्वारा पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण को प्रस्तावित करने में खुद की दुविधा बहुत स्पष्ट रूप से दिखती है जब उसने एकीकरण एवं संभागीकरण की समस्या को किसी तरह घटाने के लिए कई पाठ्यपुस्तकों की माँग की:

> किसी दी गई कक्षा में एक विषय के लिए केवल एक पाठ्यपुस्तक होने से कोई खास उद्देश्य पूर्ण नहीं होता - और राष्ट्रीयकरण के मौजूदा कार्यक्रमों में ज़्यादातर यही स्थिति है। नीति का यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए कि हरेक कक्षा में प्रत्येक विषय के लिए कम से कम तीन-चार किताबें हों और अध्यापिकाएँ विद्यालय की ज़रूरत के अनुसार सबसे अच्छी किताब चुन लें। सारे विद्यालयों के लिए अगर एक से ज़्यादा पाठ्यक्रम भी होने चाहिए तो विद्यालय को यह छूट मिले कि वह अपनी ज़रूरत के हिसाब से पाठ्यक्रम चुन ले (भाग 9.21)।

2.5 विकेंद्रित पाठ्यचर्या विकास के समर्थन में

पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों के विकेंद्रीकरण एवं विविधता में पहले की अस्पष्टता, गुणवत्ता, मानकों की उपलब्धि के पालन एवं व्यापक लोकतांत्रिक दर्शन को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त तरीकों की ज़रूरत को दर्शाती है। यह देखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि आज के संदर्भ में इन मुद्दों को कैसे देखा जाए और कैसे संबोधित किया जाए। आज हम समय के ऐसे मोड़ पर हैं जहाँ एक तरफ़ कई राज्यों ने अपनी पाठ्यपुस्तकें स्वयं बनाने की पहल कर दी है और अपनी खुद की बोर्ड परीक्षाएँ संचालित करते हैं। असल में, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम की धारणा को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से पाठ्यपुस्तक में समेट कर, परीक्षाओं के लिए केवल उनको पढ़ना भर ही पर्याप्त मान लिया गया है। बच्चे असल में क्या सीखते हैं और पाठ्यचर्या कैसे उनके विकास को आकार देती है ये मुद्दे बहुत ही धुँधले और बेमायने हो गए हैं।

पाठ्यपुस्तकों की इस विनाशक भूमिका ने न केवल उनकी शैक्षिक उपयोगिता को विकृत किया है बल्कि सरकार द्वारा अपने राजनीतिक एवं वैचारिक प्रचार के लिए भी इस्तेमाल होने दिया है। इसके साथ, निजी विद्यालय निजी प्रकाशकों द्वारा छापी वैकल्पिक पाठ्यपुस्तकों की ओर तेज़ी से बढ़ रहे हैं और उन कक्षाओं में जिनमें बोर्ड की परीक्षाओं का दबाव नहीं है, बाज़ार भी लगातार अपना प्रभाव जमा रहा है जिससे बोर्ड के नियंत्रण को पराजित किया जा सके। गुणवत्ता सुनिश्चित करना, व्यापक प्रदर्शन के मानक और लोकतांत्रिक आदर्शों की पराजय को रोकना आज की स्थिति में इन सभी मुद्दों के प्रति चिंता और भी ज़्यादा विस्तारित हो जाती है।

शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का वर्तमान कार्यक्रम – सर्व शिक्षा अभियान भी पाठ्यचर्या विकास में विकेंद्रीकरण की माँग करता है जिसमें रेखांकित किया गया है कि पाठ्यचर्या ज़िला स्तर पर बनाई जाए। अभियान में जिला स्तर की शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं (डाइट) और संबंधित संस्थाओं के क्षमता विकास पर ज़ोर दिया गया है। हम इस ज़रूरत का समर्थन करते हैं और यह सुझाव देते हैं कि एन.सी.ई.आर.टी. एवं अन्य राष्ट्रीय संस्थानों को विकेंद्रित पाठ्यचर्या विकास और पाठ्यपुस्तक निर्माण में सचेत रूप से क्षमता विकास को बढ़ावा देना चाहिए – राज्य और ज़िले के स्तर पर भी। प्रदर्शन के मूल मानकों के समायोजन का भार इसी पाठ्यचर्या समीक्षा की प्रक्रिया में लिया जा सकता था।

यह भी सुझाया जाता है कि संघीय राष्ट्रीय संरचना का अनुसरण करते हुए राज्य स्तर पर स्वायत्त संस्थाएँ बनाई जाएँ जिससे उपयुक्त तरीके पैदा किए जाएँ जो पाठ्यचर्या के विभिन्न पैकेज़ों को स्वीकृति दें जिनमें पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक प्रशिक्षण, उनकी भर्ती की प्रक्रिया, परीक्षाएँ एवं मूल्यांकन आदि शामिल हों। राष्ट्रीय संरचना की जवाबदेही केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सेंट्रल एडवाइज़री बोर्ड ऑफ़ एजुकेशन-केब) की तरफ़ होगी और उसे कुशलतापूर्वक आधार बिंदु एवं दिशा निर्देश तैयार करने चाहिए, प्रलेखन एवं उसका पुनरवलोकन करना चाहिए, उपयुक्त परामर्श सुनिश्चित करना चाहिए और यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि विभिन्न राज्य आपस में अपने अनुभव बाँटें। राष्ट्रीय संरचना को यह ध्यान देना होगा कि नियंत्रण की प्रक्रिया पारदर्शी हो और सभी रपटें सार्वजानिक रूप से उपलब्ध हों। जो राज्य समूह का गठन हो उसमें शिक्षा में व्यावसायिक अनुभव रखने वाले लोग हों, गैर सरकारी संस्थानों के लोग हों।

राज्य समूह विभिन्न ज़िलों में तैयार सभी पाठ्यचर्या के पैकेज़ों की समीक्षा करेगा तथा इन्हें स्वीकृति देगा। यह उनका उपयोग करेगा और अपनी रपट एवं सामग्री राष्ट्रीय स्तर पर बाँटेगा। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह राष्ट्रीय एवं राज्य समूह खुद किसी पाठ्यचर्या पैकेज के विकास में भाग न लें, न ही पाठ्यचर्या निर्माण में, न ही परीक्षा संचालन में और उनमें आपस में कोई मतभेद न हों। इस प्रक्रिया में सभी पाठ्यपुस्तकें राज्य समूह द्वारा देखी एवं स्वीकृत की जाएँगी जिसमें निजी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तकें भी शामिल होंगी। इसके अलावा, यह समूह बहुत प्रबलता से यह सुझाव देता है कि नियमन प्रक्रिया को बहुत सावधानी से कुशलतापूर्वक बनाया जाए जिससे नौकरशाही एवं राजनीतिक दबावों से होने वाली विकृतियों से बचा जा सके और समूह के

अंदर भ्रष्टाचारी व्यवहारों और निहित स्वार्थ के कारण उठने वाली समस्याओं को दूर रखा जा सके जो कि पाठ्यचर्या पैकेज़ों को अनुमोदित करने की प्रक्रिया के समय आती है।[1]

3. प्रत्ययात्मक क्षेत्र का मानचित्रण : पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक की धारणाएँ

3.1 मौजूदा परिदृश्य

तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम की धारणाएँ एक दूसरे से बहुत मिलती जुलती हैं। 1975 में आई पाठ्यचर्या की रूपरेखा असल में पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम को परिभाषित करती है। फिर भी पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या की इस धारणा में शिक्षा के लक्ष्य शामिल नहीं हैं। बल्कि इस दस्तावेज़ के नज़रिए में शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यचर्या का बाहर से मार्गनिर्देशन करते हैं। बाकी दो दस्तावेज़ भी इसे परिभाषित तो नहीं करते लेकिन ज़्यादातर इसी परिभाषा का अनुसरण करते हैं। पाठ्यचर्या के तीनों ही ढाँचे सरोकारों एवं मुद्दों पर बल डालते हैं लेकिन सरोकार, लक्ष्य एवं पाठ्यचर्या की विषयवस्तु में कोई स्पष्ट संबंध नहीं बिठाते। शिक्षा शास्त्र एवं ज्ञान पर उनका नज़रिया भी बहुत हल्के ढंग से परिभाषित है। ज़्यादातर निर्देशों के पीछे कोई तर्क नहीं दिया गया है।

अधिकतर राज्य स्तर की पाठ्यचर्या के दस्तावेज़ इन्हीं तीनों की खराब नकल हैं और ज़ोर मुख्यत: पढ़ाई की योजना, समय और अंक तथा पाठ्यक्रम पर दिया गया है। इनमें से अधिकतर पाठ्यक्रम की व्यापक तसवीर को देखते भी नहीं हैं। इन शब्दों के इस्तेमाल में शैक्षिक लेखन एवं विचार-विमर्श ज़्यादातर संदेहास्पद ही रहता है। वास्तव में कई नवाचार कार्यक्रम जिन्होंने पाठ्यचर्या की तरफ़ बहुत लचीला रुख बना रखा है उन्होंने भी पूरी तसवीर को नहीं देखा है। वे अक्सर अपने चुने हुए पहलू को गैर आनुपातिक ढंग से विस्तारित कर देते हैं।

अधिगम को देखने का नज़रिया अकसर ही राष्ट्रीय एवं राज्य के दस्तावेज़ों में अभिव्यक्त रहता है और गैर-सरकारी संस्थानों के दस्तावेज़ों में सबसे ज़्यादा उत्साही रूप में। शिक्षा में जो राष्ट्रीय स्तर की चर्चा है उसमें कुल मिला कर यह प्रभाव मिलता है कि आम शिक्षा में योजना और विशिष्ट रूप से पाठ्यचर्या की योजना बनाने के लिए केवल अधिगम का सिद्धांत चाहिए चाहे वह बहुत ही हल्के रूप से परिभाषित हो। ज्ञान के ऊपर क्या रुख अपनाया गया है इसका कोई भी उल्लेख नहीं है सिवाय इसके जो अधिगम के चयनित दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने के लिए ज़रूरी है।

3.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा और संक्रियात्मक परिभाषाएँ

जैसाकि ऊपर वर्णित था कि वर्तमान समय में हमारे देश के शैक्षिक संवाद में 'पाठ्यचर्या' शब्द एक बहुत अस्पष्ट शब्दों में से है। एक ओर तो यह केवल कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषयों की सूची के रूप में दर्शाया जाता है और दूसरी ओर यह *विद्यालय के बाहर* और अंदर एक संपूर्ण अनुभव प्रदान करने वाली किसी चीज़ की तरह उभरता है।[2] इस प्रतिबिंब के दो भिन्न छोरों के बीच अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं और पाठ्यचर्या[3] के अनेक परिप्रेक्ष्य लिए जा सकते हैं। यह स्थिति अन्य देशों में भी समान दिखाई देती है। क्रिस्टोफ़र विंच लिखते हैं कि "क्या पढ़ाया जाना चाहिए क्या नहीं, इस पर जब भी चर्चा होती है तो दुर्भाग्यवश यह अपारदर्शी होती है जो कभी बहुत विस्तार से तो कभी बहुत संकुचित रूप में परिभाषित करती है कि पाठ्यचर्या को क्या गठित करता है।" उदाहरण के लिए, एक सरकारी निरीक्षक के द्वारा कहते हुए सुना गया कि 'पाठ्यचर्या का मतलब है वह सभी गतिविधियाँ जो विद्यालय में होती हैं।' तो क्या विद्यालय की दीवारों को रँगने के लिए चुना गया रंग पाठ्यचर्या चुनाव का प्रश्न है और विद्यालय में धमकाने और सताने संबंधी गतिविधियाँ पाठ्यचर्या की विषयवस्तु

---

1. समूह का एक सदस्य इस संस्तुति से इत्तेफाक नहीं रखता था कि ऐसी कोई राष्ट्रीय संस्था बनाई जाए।

2. प्राथमिक शिक्षा पाठ्यचर्या, केरल सरकार (विशेष बल)

3. दिगंतर, केरल में गतिविधि आधारित शिक्षण और इसकी उपलब्धियाँ: डीपीईपी में शिक्षाशास्त्रीय हस्तक्षेपों का एक अध्ययन, 2002

(यह भी देखें विटफिल्ड 1971)। इसके विपरीत इसकी परिभाषा कि यह "नियोजित, संपोषित और नियमित अधिगम, जिसे गंभीरतापूर्वक लिया गया हो, जिसकी एक सुनियोजित विषयवस्तु हो और जो अधिगम की अवस्थाओं के साथ चलता हो," (विल्सन 1977) ऐसी गतिविधियों को विकसित करेगी जिससे बच्चे विद्यालय में रहना चाहें। पर ऐसी गतिविधियों को पाठ्यचर्या की बहस में गंभीरतापूर्वक नहीं लिया गया। जैसे लकड़ी का काम पाठ्यचर्या का हिस्सा नहीं है। पाठ्यचर्या के चुनाव के प्रश्न को समझने की कुंजी पाठ्यचर्या और शिक्षा के लक्ष्यों के संबंध को देखने में है। *पाठ्यचर्या शैक्षिक उद्देश्यों को क्रियान्वित करने की योजना है।*[4]

भारत के हाल के दस्तावेज़ों में पाठ्यचर्या की परिभाषा को बहुत ही व्यापक रूप में लेने की प्रवृत्ति है। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत सभी प्रकाशनों में, अनेक नवोन्मेषी गैर सरकारी संस्थाओं और पाठ्यचर्या की हाल ही की चर्चाओं में अनेक बार यह कहा गया है कि विद्यालय में जो भी होता है वह पाठ्यचर्या का हिस्सा है। दूसरी ओर व्यावहारिक स्तर पर पाठ्यक्रम को एक विशिष्ट विषय के विद्यालयी उद्देश्यों और विषयों की सूची के रूप में मानते हुए इसे ही पाठ्यचर्या का नाम दिया गया। यह दो प्रवृत्तियाँ पहली दृष्टि में विरोधी नज़र आती हैं। साहित्य दावा करता है कि सभी कुछ पाठ्यचर्या बने और दूसरी ओर योजनाबद्ध दृष्टिकोण विद्यालयी अनुभव के बहुत ही संकुचित हिस्से को घेरता है। लेकिन घोषित रूप में सभी कुछ पाठ्यचर्या है यह नियोजन के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस प्रकार जो आवश्यक माना जाता है वह नियोजित है तथा पाठ्यचर्या के विस्तृत परिदृश्य का बचे हुए भाग को संयोग से होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पाठ्यचर्या की सार्थक धारणा को रचित करने की कोशिश में सभी अंतरों के होते हुए यह ध्यान में रखना ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या का गंभीर सरोकार इस मुख्य प्रश्न में है कि ''किस प्रकार की चीज़ें हमें शैक्षिक संस्थानों में पढ़ानी चाहिए... वास्तव में क्या है। यह इतना महत्त्वपूर्ण सवाल नहीं है जितना कि क्या होना चाहिए। और यहाँ प्रश्न पाठ्यचर्या के चुनाव का है'' (विंच)। इसी तरह से और आगे बढ़ते चार मूलभूत प्रश्न जो राल्फ टायलर की पुस्तक *पाठ्यचर्या एवं शिक्षण के मूलभूत सिद्धांत* के आधार हैं, इन्हें नीचे सूचीबद्ध किया गया है। ये प्रश्न इस दिशा में बढ़ने के लिए अभी भी एक अच्छा मार्गदर्शन प्रस्तुत करते हैं -

1. विद्यालय को कौन-से शैक्षिक लक्ष्य प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए?
2. कौन-से शैक्षिक अनुभव व्यवस्थित किए जा सकते हैं जोकि इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हों?
3. ये शैक्षिक अनुभव किस प्रकार प्रभावी रूप से संगठित किए जाएँ?
4. यह किस प्रकार निर्धारित किया जाए कि उद्देश्यों की पूर्ति हो गई है? (टायलर 1949, 1)

1975 में पाठ्यचर्या समिति जिसने 'द कॅरिकुलम फॉर टेन इयर स्कूल : ए फ्रेमवर्क' लिखा, उसने परिभाषित किया कि 'पाठ्यचर्या' शब्द का क्या अर्थ है एक ''सोचे-समझे रूप में शैक्षिक अनुभवों के नियोजित समुच्चयों का संपूर्ण योग पाठ्यचर्या है, जो बच्चों को विद्यालय द्वारा दिए जाते हैं। इस प्रकार यह संबंधित है-

1. एक विशिष्ट अवस्था या कक्षा में शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों से
2. विषय आधारित निर्देशात्मक उद्देश्य और विषयवस्तु से
3. अध्ययन के कोर्स और समय निर्धारण से
4. शिक्षण-अधिगम अनुभवों से
5. निर्देशात्मक साधनों और सामग्रियों से
6. अधिगम आगमों के मूल्यांकन और विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों की प्रतिपुष्टि से।''

यह परिभाषा टायलर द्वारा पूछे गए चार मूलभूत प्रश्नों के साथ सम्मिलित होने वाली दिखाई देती है। यद्यपि परिभाषा विशिष्ट अवस्था या कक्षा में शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों की बात करती है। तथापि यह शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को पाठ्यचर्या के बाहर के प्रयासों पर छोड़ देती है। सामान्य शैक्षिक उद्देश्यों की अनुपस्थिति में किसी भी

4. क्रिस्टोफ़र विंच, शिक्षा दर्शन में मुख्य अवधारणाएँ, रूटलेज, लंदन, यू.के.

पाठ्यक्रम की कल्पना करना कठिन होगा। शायद समिति ने विचार-विमर्श के बाद निर्धारित किया कि उद्देश्यों का मुद्दा मुख्य रूप से नीति का मामला है ना कि पाठ्यचर्या का। और इस प्रकार पाठ्यचर्या को ज़्यादातर या कम रूप में पाठ्यक्रम के पर्यायवाची की तरह देखा जाता है (यदि कोई एकवचन शब्द 'पाठ्यक्रम' को 'सभी विद्यालयी विषयों के पाठ्यक्रम समूहों' के रूप में प्रयोग करें)।

यहाँ एक अस्पष्टता नज़र आती है कि परिभाषा के अनुसार पाठ्यचर्या का सरोकार अंतर्निहित सिद्धांतों के निर्धारण से है अथवा उस विस्तृत विवरण से है जो (2) से (4) बिंदुओं में सूचीबद्ध हैं। यदि यह विस्तृत विवरण है जैसा कि अभिप्राय है तो यह परिभाषा स्पष्ट रूप से पाठ्यक्रम की है और यदि इसे 'पाठ्यचर्या' की तरह प्रचारित किया जाए तो यह उन विकल्पों को या चुनावों को सीमित कर देगी जो विद्यालयों और शिक्षकों द्वारा अपने विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए। विस्तृत परिपेक्ष्य से देखी गई पाठ्यचर्या अध्ययन के कोर्स की दिशा से अलग होगी। यह स्वयं अध्ययन का विषय बनने के स्थान पर अध्ययन के विषय का आधार प्रस्तुत करती है।

एक और प्रश्न जो इस परिभाषा के संबंध में उठता है वह है औचित्य का। पाठ्यचर्या के लिखित उद्देश्यों को स्वीकारने का औचित्य क्या है - जो विषयवस्तु पढ़ाई जानी है, जो कार्यविधि अपनानी है और इसी तरह के अन्य बिंदु? इन पाठ्यचर्या चुनावों का आधार क्या होना चाहिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। लगभग सभी पाठ्यचर्या चुनाव एक वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य रखते हैं। वास्तव में चुनाव की मान्यता इस पर आधारित है कि अनेक उपलब्ध विकल्पों में से एक को चुना जाए। संयोग से किया गया चुनाव चुनाव नहीं कहा जा सकता है। यह चुनाव तभी कहलाएगा जबकि चुनाव करने के तर्कसंगत आधार हों। इस प्रकार पाठ्यचर्या चुनाव को सामान्य स्वीकृत आधार पर तर्क संगत ढंग से करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या की पूर्ण और उपयोगी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है : *पाठ्यचर्या नियोजित गतिविधियों का समूह हो सकती है जो विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों को क्रियान्वित करने के लिए डिज़ाइन की गई हों जिसमें महत्वपूर्ण अवयव जैसे विषयवस्तु के संदर्भ में क्या पढ़ाया जाए और कैसा ज्ञान, कुशलताएँ, व्यवहार दिए जाएँ यह सब शामिल है।" (विंच) विषयवस्तु के चुनाव की कसौटी के कथन के साथ और कार्यविधियों का चुनाव, सामग्रियाँ और मूल्यांकन (स्टेनहाउस)।*

यहाँ नीचे दिए गए छः आयताकार बक्से, फैले हुए और हल्के से एक दूसरे के ऊपर या मिले क्षेत्रों के चुनावों का प्रतिनिधित्व दर्शाते हैं। उनके साधारण नामों का संकेत तो है लेकिन विषयवस्तु नहीं सुझाई गई है।

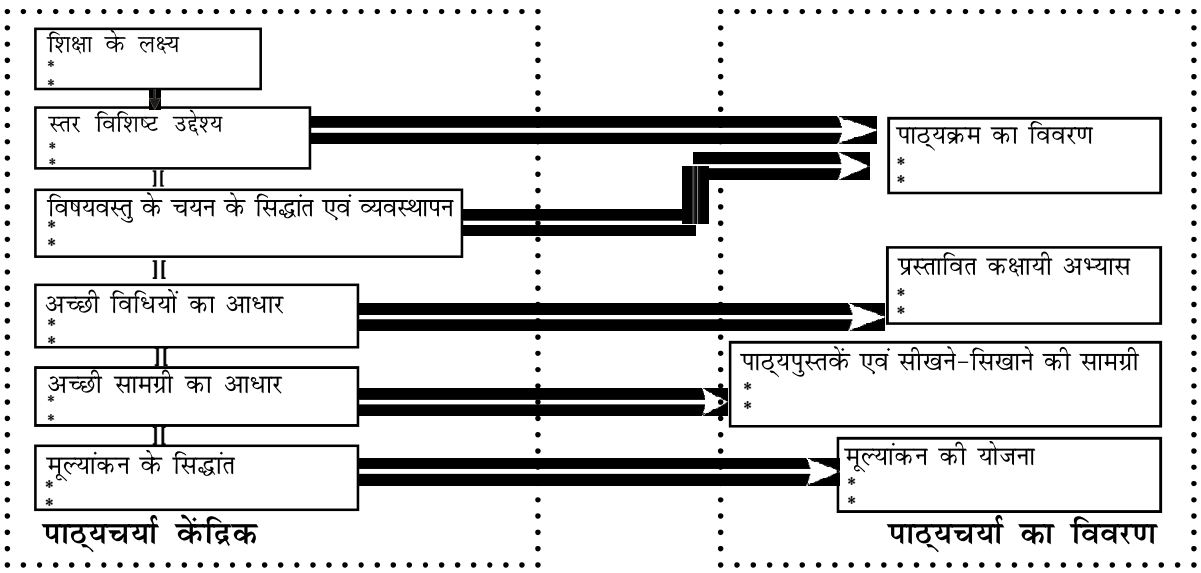

मुख्य बिंदु (*) बक्सों में दिखाने का अर्थ है कि वहाँ कुछ लिखा जाना है। ये बक्से केवल प्रश्नों के समूहों को सुविधाजनक रूप में संकेतित करने के रास्ते हैं। यदि कोई उदाहरण के रूप में 'तर्क पर आधारित स्वायत्तता' के विकास को शिक्षा के सामान्य लक्ष्य रूप में लेता है तो इसको उस लक्ष्य वाले आयत में एक बिंदु के रूप में लिखा जा सकता है। इसी तरह जब सारे प्रश्नों के समुचित उत्तर अनेक उत्तरों के बीच संबंधों और उन्हें एकल रूप में देखकर दिए जाएँगे तो यह संरचना पाठ्यचर्या का एक उदाहरण होगा।

जैसे यहाँ समझा गया कि पाठ्यक्रम न तो कोई दस्तावेज़ है और न ही अनुभवों का क्रम है, यह बच्चे के अधिगम को सुगम बनाने की योजना है। यह योजना वहाँ से प्रारंभ होती है बच्चा जहाँ है और अधिगम के उन सभी आयामों को व्याख्यायित करती है जो आवश्यक माने जाते हैं और बताती है कि इस तरह का अधिगम क्यों आवश्यक है और यह कौन से शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करता है। यह योजना अवस्था आधारित उद्देश्य भी निर्धारित करती है। कौन-सी विषयवस्तु पढ़ाई जाए और कैसे इसे संगठित किया जाए यह भी बताती है। यह योजना पढ़ाने की विधियों और मूल्यांकन के सामान्य सिद्धांत भी बताती है, और अच्छे शिक्षण-अधिगम सामग्री का मानदंड भी सुनिश्चित करती है। इस तरह की योजना, निश्चय ही मुख्य रूप से हमेशा दस्तावेज़ में निर्धारित होती है और शिक्षक की देखरेख में बच्चे के संगठित अनुभवों के द्वारा कार्यांवित की जाती है। लेकिन शायद संकल्पनात्मक रूप से योजना केंद्र में होनी चाहिए। जबकि दस्तावेज़ ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है और अनुभवों का पथ योजना का क्रियान्वयन।

ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि ये सभी विशेष शब्दावलियाँ ऐतिहासिक रूप से विकसित हुई हैं और चर्चा में कुछ उद्देश्यों को पूरा करती हैं। वे उत्तम संकल्पनात्मक साधनों को प्रतिबिंबित करने और धीरे-धीरे इन्हें स्पष्ट करने की कोशिशों के हिस्से हैं। इस प्रकार जिस तरह उचित और बहुत ही उपयोगी प्रत्ययों को निर्मित करना संभव है उसी प्रकार अनुपयोगी प्रत्ययों और परिभाषाओं को निर्मित करना भी संभव है जो चर्चा को समृद्ध करने के स्थान पर अस्पष्ट करती है। किसी को प्रत्ययों पर विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन एक ओर सावधानीपूर्वक इसकी निश्चितता को उद्देश्य के साथ संबंधित करने की आवश्यकता है और दूसरी ओर शिक्षा पर सामान्य चर्चा में स्वीकृति की आवश्यकता है।

3.3 क्रियान्वयन की व्याख्या

पाठ्यचर्या जैसे कि यहाँ वर्णित है निर्णय लेने के लिए संकल्पनात्मक रूप से संरचित है न कि कक्षा में क्या किया जाए इसका वर्णन है। ऊपर सुझाई गई संरचना को आवश्यकता है – करने योग्य सिद्धांतों की तथा कई स्थानों पर कसौटियों की, न कि सूचियों तथा लंबी-लंबी व्याख्याओं की। उदाहरण के लिए यह ऐसे सिद्धांतों की माँग करता है जिनके आधार पर विद्यार्थियों के लिए विषयवस्तु का चुनाव तथा संगठन किया जाए। कक्षा के लिए निश्चित रूप से चुनी हुई सुनियोजित विषयवस्तु, बच्चों से अंत:क्रिया और कक्षा संगठन के विस्तृत तरीकों की आवश्यकता है। कक्षा में वास्तविक शिक्षण अधिगम सामग्री की आवश्यकता है, केवल ऐसे आधारों की नहीं जिन पर यह विकसित और चुनी जा सके। जिसका अर्थ है कि परिदृश्य को पूरा करने के लिए आगे भी इस पाठ्यचर्या के आधार पर व्याख्या की आवश्यकता होगी।

अवस्था आधारित उद्देश्यों और विषयवस्तु के चुनाव और संगठन के सिद्धांतों के आधार पर और स्तर विशिष्ट उद्देश्यों एवं विषयवस्तु के चयन के सिद्धांतों एवं व्यवस्थापन के आधार पर ज्ञान का एक भंडार बनाया जा सकता है जिसमें चुने हुए प्रत्यय, जानकारी, ज्ञान निर्माण के सिद्धांतों, मान्यकरण के आधार, कौशल, अभिवृत्तियाँ, मूल्य शामिल हों जो उस विशिष्ट स्तर के लिए उपयुक्त हों। अत: स्वीकृत *पाठ्यचर्या* से किसी भी विशिष्ट स्तर के लिए पाठ्यक्रम विकसित किया जा सकता है।

यहाँ पर यह ज़ोर देने की ज़रूरत है कि पाठ्यक्रम में क्या शामिल हो और क्या शामिल न हो यह शिक्षण की विधि को देखते हुए निर्धारित होना चाहिए या दूसरे शब्दों में शिक्षण विधियों के संबंध में निर्णय विषयवस्तु के चुनाव के साथ ही साथ लिए जाएँ। पर तब ऐसे भी मौके

हो सकते हैं जब उद्देश्यों के आशय के अनुसार अथवा विषयवस्तु के संगठन के आधार पर किसी विषय-विशेष को पढ़ाया जाना उचित समझा जाए और तब शिक्षण के उपयुक्त तरीकों का चुनाव किया जाए। अगर ऐसी स्थिति है कि वाई स्तर पर एक्स विषय पढ़ाया जाना है लेकिन उस अवस्था के बच्चों के लिए शुरुआत या परिचय के उपयुक्त तरीके उपलब्ध नहीं हैं तब इनके विकास का इंतजार करना चाहिए न कि किसी भी तरह विषय शुरू करने पर ज़ोर देना चाहिए।

ठीक इसी प्रकार, असल में पढ़ाने के लिए, ज़रूरत होगी विभिन्न तरीकों के विवरण की, सीखने-सिखाने की सामग्री की, और उपयुक्त मूल्यांकन सिद्धांतों की। नयी तसवीर कुछ नीचे दिए गए रेखाचित्र की तरह होगी:

पाठ्यचर्या के विवरण से शिक्षक को कक्षाई पद्धतियों के लिए असल में साधन मिलते हैं, जबकि पाठ्यचर्या के सारभाग से इन पद्धतियों को अपनाने के लिए एक हद तक तर्क मिलता है। अत: कक्षायी पद्धतियों को शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि इस प्रत्ययात्मक ढाँचे से अध्यापिका सिद्धांत एवं व्यवहार के बीच एवं शिक्षा के आदर्शों और पद्धति के बीच एक परिवर्तनशील एवं सक्रिय वार्तालाप के लिए सक्षम होती है।

जब अध्यापिका बच्चों के साथ कक्षा में काम करना शुरू करती है, उसके पास कुछ विषयवस्तु होती है जो वह उनको पढ़ाना चाहती है। उसके पास पढ़ाने के कुछ तरीके कम से कम दिमाग़ में तो होते ही हैं। कम या ज़्यादा वह कुछ सामग्री भी उपयोग में लाती है और उसको कुछ अंदाज़ा होता है किसी चीज़ को सीखने का क्या अभिप्राय है और अधिगम के उपयुक्त सूचक क्या हैं? दूसरे शब्दों में, उसके पास पाठ्यक्रम, उपयुक्त कार्यप्रणाली, सीखने-सिखाने की सामग्री का पैकेज़ एवं मूल्यांकन का सिद्धांत है। शिक्षण के लिए यह न्यूनतम शैक्षिक तैयारी है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कक्षायी पद्धतियों के यह सारे अंग, अध्यापिका के दिमाग में स्पष्ट और परिभाषित हैं। अधिकतर अध्यापिकाओं के पास केवल एक चीज़ होती है, वह है पाठ्यपुस्तक। पाठ्यपुस्तक, पाठ्यक्रम का एक मूर्त रूप बन जाती है उसमें जितना भी है उसे ही पढ़ाया जाना है। वह कार्यप्रणाली की एक कुंजी बन जाती है *जिसमें पढ़ना होता है और एक अच्छा खासा भाग बार-बार पढ़ के याद करने के लिए होता है।* वह मूल्यांकन की एक व्यवस्था बन जाती है। *पाठ के अंत में प्रश्नों का मौखिक एवं लिखित उत्तर देना होता है जिसके लिए पाठ की लिखित सामग्री को उसी तरह लिखना होता है।* यहाँ पाठ्यपुस्तक, पाठ्यक्रम एवं कक्षायी पद्धतियों के सभी पहलुओं का मूर्त रूप बन जाती है।

लेकिन पाठ्यपुस्तक एवं शिक्षण को इस तरह देखने का यह तरीका बहुत ही गैर-चिंतनात्मक है। ऐसे तो यह बहुत ही सीमित, बाध्यकारी, नियमित रूप से होने वाली और साधारण गतिविधि बन जाती है जिसका बच्चों की समझ और क्षमताओं से बड़ा कम संबंध होता है। यह सब इसीलिए है क्योंकि जो प्रत्ययात्मक रूपरेखा अध्यापिका की पद्धतियों का मार्ग निर्देशन करती है वह उसके अपने अनुभवों से सीखने में मदद करने में अयोग्य है। वह रूपरेखा उसे शिक्षण को मानव जीवन से जोड़ पाना और बच्चों के अनुभवों को ध्यान में रखना नहीं बता पाती। यह अध्यापिका के लिए अनिवार्य (केवल अनिवार्य, पर्याप्त नहीं) शर्त है कि वह अपनी गतिविधि की प्रकृति एवं उसका उपयोग समझे जिससे वह खुद को एवं अपने विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकों के गैर-चिंतनात्मक उपयोग से जन्मी साधारण दिनचर्या के शोषणात्मक अत्याचार से मुक्त कर पाए। तभी वह कक्षा में एक सक्रिय निर्णय लेने वाली बन सकती है जो पाठ्यपुस्तक से नहीं बच्चों के मस्तिष्क से जूझने लायक होगी।

अध्यापिका पाठ्यपुस्तक से हट कर सोच पाए, इसके लिए दो शर्तें हैं - पहली, यह समझना कि पाठ्यपुस्तक केवल एक सुविधाजनक साधन है, बच्चों से सीखने की अपेक्षाएँ हैं, उन सबका सुविधाजनक व्यवस्थित तरीके से किया गया एकत्रीकरण है, और दूसरा, इस बारे में जागरूक होना कि पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक में संकल्पनात्मक अंतर है। इस अंतर से बच्चों के अनुभवों को कक्षा में शामिल होने की संभावना को बल मिलता है

और इससे पाठ्यपुस्तक और अन्य संसाधन/अनुभवों के विकल्प से चुनने की संभावना, उन विकल्पों पर चिंतन को प्रोत्साहन देती है और अंत में पाठ्यपुस्तक के सुधार की भी संभावना बनती है। इसी तरह के तर्क पढ़ाने के तरीके एवं मूल्यांकन के अंतर के बारे में और पाठ्यपुस्तक एवं अन्य सामग्री के संकल्पनात्मक अंतर पर भी दिए जा सकते हैं।

यहाँ पर विचारात्मक बिंदु है कि अपने खुद के *अनुभवों से होने वाले अधिगम के लिए मननशील कक्षायी पद्धतियाँ एक अनिवार्य शर्त है। मननशील पद्धति* को अनिवार्य रूप से सैद्धांतिक रूपरेखा की ज़रूरत होती है जिनसे अनुभवों को ज्ञान में व्यवस्थित किया जा सके और बाँटा जा सके, जिससे ज्ञान का सार्वजनिक परीक्षण हो सके और उन स्थितियों में इस्तेमाल हो सके जो ज्ञान उत्पन्न करने वाली स्थितियों से अलग हैं। यहाँ यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि ऐसा कोई शिक्षक नहीं है जिसके पास पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र, सामग्री एवं मूल्यांकन के मत या धारणाएँ नहीं हैं। लेकिन ऐसे शिक्षक बहुत कम हैं जो इनके बारे में सामान्य और व्यापक रूप से प्रचारित सिद्धांतों और मान्यताओं के आधार पर गहनता से सोचकर, जाँच कर और विवेकपूर्ण ढंग से तर्क करके अपनाते हैं। ऐसे भी कुछ ही शिक्षक हैं जो अपने इन विचारों को कक्षागत व्यवहारों में उतारते हैं। शिक्षकों से न ऐसी उम्मीद की जाती है और न ही उनको ऐसा कोई मौका दिया जाता है। शिक्षकों की स्वायत्तता बढ़ाने एवं मननशील पद्धतियाँ पैदा करने के लिए उनको सैद्धांतिक रूपरेखाओं से परिचित करने की ज़रूरत है। प्रश्न यह नहीं है कि किस के पास कौन-सा विशिष्ट मॉडल है, बल्कि प्रश्न यह है कि क्या शिक्षक के पास ऐसा मॉडल है जो दूसरों के साथ बाँटा जा सके और जिस पर वाद-विवाद हो सके।

फिर भी मननशील व्यवहारों, पद्धतियों की दिशा में कक्षायी पद्धतियों को पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्रीय विकल्पों, सीखने-सिखाने की सामग्री एवं मूल्यांकन पद्धति से जोड़ना केवल पहली सीढ़ी है। क्या पढ़ाया गया, कैसे, किस सामग्री द्वारा और उसके अधिगम का मूल्यांकन कैसे हो इसको पाठ्यक्रम के शब्दों में प्रतिबिंबित और वर्णित किया जा सकता है। लेकिन पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्रीय निर्णयों, पाठ्यपुस्तकों के विकल्पों को चुनने के क्या आधार हो सकते हैं? हमने देखा कि हमने जिसे पाठ्यचर्या कहा उसे विवरण और उनको स्वीकार करने के आधारों की ज़रूरत है। परंतु उन कारणों को स्वीकृति के लिए आगे व्याख्याओं और आधारों की आवश्यकता है। हालाँकि यह दोहराव है तो भी हम एक उदाहरण की मदद से इस मुद्दे को समझाते हैं।

मान लीजिए कि हम माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या के तहत चाहते हैं कि विद्यार्थी लड़के और लड़कियों के साथ उनके गाँव में होने वाले अंतर पर ध्यान दें। और हम चाहते हैं कि वह सक्रिय रूप से माता-पिता का अवलोकन करके, उनके बच्चों के साथ अंत:क्रिया करके और खुद बच्चों का साक्षात्कार करके सीखें। मान लें कोई अध्यापिका से पूछे कि *आप क्यों चाहती हैं कि बच्चे इस अंतर पर ध्यान दें और इस जानकारी को दिमाग में रखें?*

संवाद अ

***उत्तर** : क्योंकि यह पाठ्यक्रम में लिखा हुआ है, और परीक्षा में पूछा जाएगा।*

***प्रश्न** : यह आखिर पाठ्यक्रम का भाग क्यों होना चाहिए?*

***उत्तर** : ताकि बच्चे यह समझ पाएँ कि लड़कियाँ अपने पालन-पोषण और सामाजिक जीवन में किन असुविधाओं का सामना करती हैं।*

***प्रश्न** : एक अध्यापिका के रूप में हम क्यों इसमें रुचि लें कि लड़कियाँ ही अहितों का सामना करती हैं?*

***उत्तर** : क्योंकि यह आगे चलकर सामाजिक न्याय, समता जैसे मुद्दों और उनके सामाजिक-आर्थिक कारण को समझने का आधार बनेगा।*

***प्रश्न** : यह ज्ञान और यह समझ क्यों ज़रूरी है या रुचिकर समझी जाती है?*

***उत्तर** : क्योंकि यह सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता जगाने के लिए, समता की तरफ़ प्रतिबद्धता के लिए और सही व्यवहार की क्षमता के लिए काफ़ी विवेकपूर्ण तरीका लगता है।*

प्रश्न पूछ-पूछ कर इस संवाद को आराम से जारी रखा जा सकता है : *हम क्यों सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता, समता के लिए प्रतिबद्धता और इन मूल्यों के पक्ष में व्यवहार की क्षमता के लिए परेशान हों,* लेकिन प्रश्न-उत्तरों की यह संक्षिप्त शृंखला यहाँ उन बिंदुओं को रखने के लिए काफी है। पहला-पाठ्यक्रम की एक छोटी-सी विषयवस्तु (यह विवरण देने का एक तरीका मात्र है, वैसे तो ज्ञान के संगठन से विषयवस्तु का एक टुकड़ा अलग नहीं किया जा सकता है) का आधार बताने के लिए व्यापक मूल्यों एवं सिद्धांतों से संबंध स्थापित करने की ज़रूरत है। यह सिद्धांत एवं मूल्य इस ओर संकेत करेंगे कि किस तरह का समाज अपेक्षित है और कैसे मनुष्य को जीना चाहिए। उसका दूसरा पहलू देखें तो कहेंगे कि अगर शिक्षा से समाज में कुछ विशिष्ट मूल्यों की स्थापना में योगदान की उम्मीद है तो पाठ्यचर्या के ढाँचे को ज़रूरत है कि उनके संबंधों को उजागर करे जिससे विषयवस्तु के चुनाव पर असर पड़े। दूसरा - अध्यापिका जो इन संबंधों को लेकर जागरूक है वह इन मूल्यों और क्षमताओं के विकास के लिए बेहतर विकल्प चुनने में सक्षम है।

इसी तरह का एक संवाद इस बात पर निर्मित किया जा सकता है कि अध्यापिका ने लड़कियों-लड़कों से होने वाले भेद को पढ़ाने के लिए अवलोकन एवं साक्षात्कार का रास्ता क्यों चुना? उन्हें इस बारे में किताब में से तथ्य पढ़ लेना पर्याप्त क्यों नहीं लगा? इस तरह के संवाद में अध्यापिका को अपने विकल्पों के पक्ष में बात करने के लिए मानव अधिगम से संबंधित सिद्धांतों/मान्यताओं की बात करनी होगी।

यह निष्कर्ष निकालना सही ही होगा कि विषयवस्तु चुनाव के सिद्धांत, अच्छी पद्धतियों के आधार, सामग्री एवं मूल्यांकन जो पाठ्यचर्या के लिए बनाए जाते हैं वह कई मान्यताओं पर आधारित होते हैं जिनको हम आधारभूत मान्यताएँ कह सकते हैं। यह दावा किया जा सकता है कि इन मान्यताओं के प्रति शिक्षक और प्रश्न-पत्र बनाने वाले जितने ज़्यादा जागरूक होंगे वे उपयुक्त पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम सामग्री, मूल्यांकन और कक्षायी पद्धतियों में लगातार सामंजस्य रखने में उतने ही ज़्यादा सक्षम होंगे। इसके साथ ही शिक्षा में निर्णय लेने वाले जितनी अच्छी तरह से अपनी पद्धतियों पर चिंतन करने के लिए तैयार होंगे उतना ही विश्वसनीय व्यावसायिक ज्ञान उत्पन्न कर पाएँगे। ऐसे में पूरी व्यवस्था को लचीलेपन का सुझाव देने में कम हिचक होनी चाहिए और व्यवस्था को मौजूद लचीलेपन का उपयोग करने में ज़्यादा समर्थता होनी चाहिए। संक्षेप में, अध्यापिका की स्वायत्तता बढ़ाने में यह अनिवार्य शर्त की तरह और बच्चे के साथ संवेदनशील अंत:क्रिया के लिए जरूरी कदम के रूप में उभरती है।

पाठ्यचर्या की रूपरेखा जिन आधारभूत मान्यताओं को इस्तेमाल करती है उनमें अंदरूनी सामंजस्य होना चाहिए, उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होनी चाहिए और सभी संबंधित व्यक्तियों की स्वीकृति होनी चाहिए। अगर ऐसी मूल मान्यताओं/सिद्धांतों पर व्यवहार रूप में सहमति हो जाए तो उसे एक बहुत ही सुविज्ञ वाद-विवाद एवं विषयवस्तु से जुड़ी उलझनों को सुलझाने का आधार बनाना चाहिए। लेकिन समस्या यह है कि इन मान्यताओं की संपूर्ण अभिव्यक्ति में हमेशा बहुत ही सीमित सफलता मिली है। इस क्षेत्र में अच्छा काम करने का एक विश्वसनीय तरीका यह है कि इन मान्यताओं का उनकी प्रकृति एवं संबंधों की नज़र में परीक्षण हो। एक अस्थायी सुझाव यह हो सकता है कि परीक्षण के आधार पर ज़्यादातर मूल-भूत मान्यताओं को चार अधिव्यापित समूहों में बाँट सकते हैं जिनके अस्थायी शीर्षक हो सकते हैं:

- मनुष्य एवं समाज से जुड़ी मान्यताएँ या सामाजिक-राजनीतिक मान्यताएँ
- ज्ञान मीमांसा से जुड़ी मान्यताएँ
- अधिगम से जुड़ी मान्यताएँ
- बच्चे और उसके परिवेश से जुड़ी मान्यताएँ

मनुष्य एवं समाज से जुड़ी मान्यताएँ (सामाजिक-राजनीतिक)

शिक्षा के द्वारा जिन मूल्यों को बढ़ावा दिया जाता है और जो पाठ्यचर्या में किए गए प्रयासों को निर्देशित करते हैं वह खुद निर्णय लेने वालों की उन धारणाओं से निकलते हैं जो वे मनुष्य एवं ऐच्छिक समाज के बारे में रखते हैं।

इस क्षेत्र में एक बहुत ही आधारभूत कथन होगा : *'शिक्षा को एक बहुवादी लोकतांत्रिक समाज का लक्ष्य रखना चाहिए जिसका आधार न्याय, समता एवं आजादी हो।'* या फिर संबंधित सामाजिक दर्शन हो कि *'स्वायत्त मनुष्यों के स्वायत्त समूहों को एक दूसरे से ज्ञान एवं पारस्परिक महत्त्व के लिए जोड़ा जाए।'* ये केवल दो उदाहरण हैं। पाठ्यचर्या की एक रूपरेखा ऐसी कई मान्यताएँ बनाती है कि - मनुष्य जीवन में क्या महत्त्वपूर्ण है, कैसे साथ रहना चाहिए जिसे राजनीतिक-नैतिक प्रकृति का कह सकते हैं।

मान्यताओं का यह समूह शायद सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है और संबंधित लोगों में स्पष्ट सहमति की माँग रखता है। हालाँकि यह व्यक्तिगत चुनाव पर आधारित विभिन्न अभिव्यक्तियों की आज्ञा देता है लेकिन यह सहमत हुए सिद्धांतों की अवमानना नहीं सहता है। अगर हम इस्तेमाल करने लायक पाठ्यचर्या की रूपरेखा चाहते हैं जिस पर सार्थक रूप से वाद-विवाद हो सके जिससे लोग जुड़ पाएँ तो इस क्षेत्र में हमें अपनी मान्यताएँ बहुत स्पष्ट रूप से रखनी होंगी।

ज्ञान मीमांसा से जुड़ी मान्यताएँ

शिक्षा में अधिगम ही ऐसा ज़रिया है जिसके द्वारा समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों और सपनों को चरितार्थ किया जा सकता है। अगर बहुवादी समाज एक ऐच्छिक लक्ष्य है तो शिक्षा केवल यही मदद कर सकती है कि समझ विकसित करे, जानकारी उपलब्ध कराए और विचारों पर विवेचनात्मक दृष्टिकोण रखना सिखाए। इसीलिए सारी शिक्षा के उद्यम का आलंब है ज्ञान, अपने विस्तारित अर्थ में जिसमें समझना, सोचने के तरीके, मूल्य एवं कौशल शामिल हैं। एक शिक्षक को यह मान्यता रखनी होगी कि ज्ञान से धारणाओं एवं क्रिया पर फ़र्क पड़ता है। अगर वह इस मान्यता को न माने तो उसकी शिक्षा के उद्यम का आधार ही खो जाएगा।

पढ़ाने के लिए ज्ञान के चुनाव के मुद्दे, उनकी क्रमिकता, विषय आधारित या एकीकृत पाठ्यचर्या, सूचना, ज्ञान और क्षमताओं के बीच का वाद-विवाद सब विभिन्न भागीदारों की ज्ञान से जुड़ी मान्यताओं पर भारी रूप से निर्भर है। शिक्षा के विवादों में क्यों कोई रास्ता नहीं निकल पाता। इसका मुख्य कारण यह है कि भागीदार कभी अपनी मूलभूत मान्यताओं पर नहीं जाते हैं। पाठ्यचर्या में विषयवस्तु चयन और उसकी व्यवस्था ज्ञान एवं अधिगम से जुड़ी मान्यताओं पर मुख्य रूप से निर्भर करती है।

अधिगम से जुड़ी मान्यताएँ

पिछले दस सालों में डी.पी.ई.पी. एवं अन्य कई व्यापक स्तर के कार्यक्रमों के कारण कक्षायी पद्धतियाँ और व्यवस्थाएँ बहुत ही पैने रूप से केंद्र बिंदु में हैं। सभी सकारात्मक अभिव्यक्तियाँ जैसे - गतिविधि आधारित शिक्षण, बाल केंद्रित शिक्षण, खेल-खेल में शिक्षा - ये सभी बच्चों के अधिगम के बारे में बहुत सारी मान्यताओं पर आधारित हैं। असल में पिछले दशक में यही शिक्षा के वाद-विवाद का मुद्दा रहे हैं और ऐच्छिक समाज या ज्ञान से जुड़ी मान्यताओं के मुद्दों की अवहेलना हुई है। बच्चे और मनुष्य से जुड़ी मान्यताएँ कक्षायी पद्धतियों को बेहतर ढ़ंग से सूचित कर पाती हैं और पाठ्यचर्या के लिए अकेले मनोविज्ञान की सीमितता भी दर्शाती हैं। चूँकि यह पाठ्यचर्या का अच्छी तरह से स्वीकृत भाग है, इसीलिए अधिगम से जुड़ी मान्यताओं की अभिव्यक्ति के लिए और तर्क देने की ज़रूरत नहीं है।

बच्चे और उसके परिवेश से जुड़ी मान्यताएँ

आखिर पाठ्यचर्या की सारी सामग्री अध्यापिका के लिए है जिससे वह बच्चों के साथ सार्थक अंत:क्रिया कर पाए। जरूरी हो जाता है कि यह समझा जाए कि बच्चा संसार को कैसे देखता है। बच्चे का सांसारिक दृष्टिकोण इस बात पर निर्भर करता है कि उसके जीवन के अनुभव क्या हैं और उसका तात्कालिक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौतिक परिवेश कैसा है। इस क्षेत्र में बच्चे की प्रकृति से जुड़ी मान्यताएँ शामिल हैं और उसके सामाजिक संदर्भ से जुड़ी भी। ऐच्छिक समाज के विषय में और मानव जाति को समझने में सामाजिक संदर्भों की अपनी भूमिका होती है। इसकी सार्थकता तब होगी जब इसमें

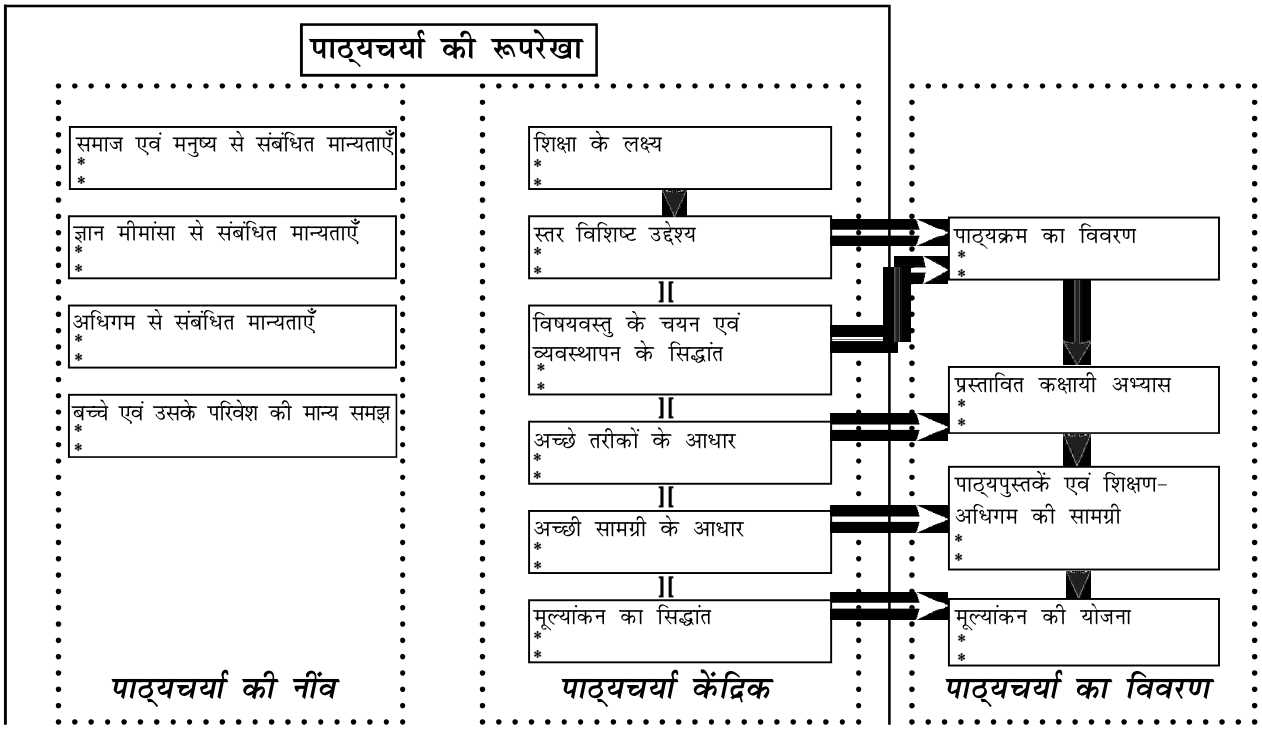

पाठ्यचर्या की रूपरेखा का ग्राफीय निरूपण

परिवेशीय सामाजिक सांस्कृतिक पहलू शामिल किया जाए-दूसरे शब्दों में ऐच्छिक समाज और अधिगम के मनोविज्ञान से संबंधित मान्यताओं को संदर्भ प्रदान किए जाएँ।

अगर इस विवेचन को ध्यान में रखा जाए तो पाठ्यचर्या की रूपरेखा का ग्राफीय निरूपण ऊपर दिए अनुसार होगा।

यह संरचना पाठ्यचर्या की रूपरेखा, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य सामग्री और कक्षायी पद्धतियों की जुड़ी हुई, एक संबंधित समझ को सुलभ बनाती है। एक शिक्षाविद जो इस तरह के प्रत्ययों का आदी हो, उसके लिए शायद यह सादी संरचना खास मायने न रखे लेकिन जो लोग शिक्षा में निर्णय के स्तर पर जूझ रहे हैं उनके लिए यह विभिन्न अंगों को जोड़ने और अंत:संबंध देखने का औजार हो सकती है। यह इन धारणाओं का एक दूसरे पर प्रभाव भी दिखाती है और इसीलिए पाठ्यचर्या में लचीलापन, कई पाठ्यपुस्तकों एवं विकेंद्रीकरण के विवाद के लिए सैद्धांतिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

इस स्तर पर कही हुई बातों, उभरती परिभाषाओं एवं संबंधों का पुनरावलोकन बहुत उपयोगी होगा। यह मान्यता है कि पाठ्यचर्या जिस केंद्रीय बिंदु को संबोधित करती है वह यह कि बच्चे को अपनी समझ और योग्यताओं के वर्तमान स्तर से अपेक्षित स्तर पर पहुँचने में कैसे मदद की जाए। उन क्षेत्रों में जो बच्चे के समाज में शिक्षा के स्वीकृत उद्देश्यों के अनुकूल हो। दूसरे शब्दों में, पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्यों एवं बच्चे की योग्यताओं के बीच में सुनियोजित समन्वयन है और इसीलिए इसकी अच्छी तरह सोची-समझी हुई दिशा होनी चाहिए, प्रगति के विश्वसनीय जरिए हों और इतना ज़्यादा लचीलापन हो कि बच्चे की प्रगति और रुचि में वे दिशाएँ भी शामिल की जा सकें जिनके विषय में पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। फिर भी मूल दिशा एवं व्यापक स्तर पर नियोजित जरिए बरकरार रहें।

इस प्रयास में होने वाले विचार-विमर्श में उठी समस्याएँ और उनके उपाय ढूँढ़ने के प्रयासों में विचारों और प्रत्ययों की एक रूपरेखा तैयार हुई है जिसकी अभिव्यक्ति एवं प्रामाणिकता के तीन स्तर हैं। रूपरेखा की रैखिक प्रस्तुति में बाईं तरफ़ के खाने में ज़्यादातर मनुष्य, समाज, ज्ञान, अधिगम, बच्चे और उसके परिवेश के बारे में मान्यताएँ हैं। इन सबको सम्मिलित करने से 'पाठ्यचर्या

की नींव' बनती है। बीच के खाने में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या के उद्देश्य, विषयवस्तु के चयन एवं व्यवस्थापन के सिद्धांत, तरीकों, सामग्री और मूल्यांकन के आधार हैं जिनको पाठ्यचर्या का सारभागी का नाम दिया जा सकता है और दाईं तरफ़ के खाने में विस्तारित पाठ्यक्रम, कई तरीके की पाठ्यपुस्तकें एवं सामग्री और मूल्यांकन व्यवस्था है जिनको पाठ्यचर्या के विवरण कहा जा सकता है।

पाठ्यचर्या की रूपरेखा : एक ऐसी योजना जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए शैक्षिक लक्ष्यों की व्याख्या करे, जिससे समझ बने कि स्कूलों में बच्चों को किस प्रकार के अधिगम के अनुभव दिए जाएँ। यह परिभाषा (स्टीयरिंग कमेटी में वितरित एक लघु दस्तावेज़ से ली गई है जिसका शीर्षक था '2004 की पाठ्यचर्या की समीक्षा: ध्यान देने योग्य कुछ बिंदु')। इस योजना में कुछ आधारभूत मान्यताएँ एवं अनुभवों को शामिल करने के आधार अवश्य सम्मिलित होने चाहिए।

पाठ्यचर्या : जैसा कि इस लेख में पहले उल्लेख किया गया है, *पाठ्यचर्या को सही रूप से योजनाबद्ध गतिविधियों का समूह समझा जाता है जिनकी रचना कुछ खास शैक्षिक उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए हो- उद्देश्यों का एक ऐसा समूह जिसमें शामिल है विषयवस्तु के लिहाज़ से क्या पढ़ाया जाए और ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति जिन्हें खासतौर से बढ़ावा मिले, विषयवस्तु को चुनने के आधार के कथन एवं तरीकों का चुनाव, सामग्री एवं मूल्यांकन।* उपर्युक्त ढाँचे के संदर्भ में उसका अर्थ 'पाठ्यचर्या की केंद्रिक स्थिति' एवं 'पाठ्यक्रम' दोनों को इकट्ठा करके होगा।

पाठ्यक्रम : यह बताता है कि विषयवस्तु के हिसाब से क्या पढ़ाया जाए और स्तर विशिष्ट उद्देश्यों के मद्देनज़र किस तरह के ज्ञान, कौशल और अभिवृत्तियों को खास बढ़ावा मिले?

किसी भी देश की शिक्षा के लिए, कुछ व्यापक सिद्धांतों जैसे न्याय, समता एवं लोकतंत्र को छोड़ कर बहुत कम चीज़ें ही तय की जा सकती हैं। इसीलिए पाठ्यचर्या ढाँचे की दिशा का मानचित्र, पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम तो केवल कुछ मुद्दों की महत्ता को दर्शाता है। ये भिन्न-भिन्न हिस्सों के बीच में जुड़ाव, प्रश्नों को उठाने के महत्त्व को उजागर करना एवं भिन्न प्रकार के जवाबों की ओर संकेत करना ये कार्य भी करते हैं। संक्षेप में संकल्पनात्मक रूपरेखा तो हमें छानबीन के लिए मात्र एक सैद्धांतिक तंत्र एवं सुसंगत वाद-विवाद के लिए राह दर्शाती है।

सुझाए गए पाठ्यचर्या ढाँचे के अवयवों जिसे 'पाठ्यचर्या का आधार' कहते हैं, के स्वभाव पर खूब वाद-विवाद है। मनुष्य क्या है? हम किस तरह का समाज चाहते हैं? हम यह जाँच कैसे करेंगे कि हमने अपेक्षित दिशा में कितनी उन्नति की है? हमें इस अपेक्षित दिशा की ओर बढ़ने में क्या मदद हो रही है या क्या बाधाएँ आ रही हैं? इन सब एवं ऐसे कई सवालों के कोई अंतिम जवाब नहीं हैं। इसी तरह ज्ञान मीमांसा और सीखने के मनोविज्ञान में विरोधाभासी सिद्धांत है तथा बच्चों की समझ और संदर्भों के अंतर की व्याख्याएँ हैं। इसीलिए मूलभूत मान्यताओं को ध्यान से सुस्पष्ट करना होगा और उसमें पर्याप्त सामान्यीकरण होना चाहिए ताकि भिन्नताओं की संभावना हो। इस क्षेत्र में लगातार वाद-विवाद, वार्तालाप एवं अध्ययन चलना चाहिए। मान्यताओं को यदि साफ तौर से बता दिया जाए तो उससे विमर्श को एक सामान्य दिशा मिलती है एवं राष्ट्रीय स्तर पर वार्तालाप को सुसंगत एवं सारगर्भित बनाया जा सकता है।

बीच वाले हिस्से में हम थोड़े ज़्यादा विशिष्ट हो सकते हैं, पाठ्यचर्या की केंद्रीय स्थिति मानव मूल्यों की सामान्य अवधारणा, मूलभूत क्षेत्र में कही गई पूर्व धारणाओं (हालाँकि इसमें हमेशा चुनौती होती है), भारतीय संविधान, मानव अधिकार घोषणा आदि हमारे उद्देश्यों एवं आम सरोकारों को एक ठोस ज़मीन देते हैं। विषयवस्तु के चयन एवं तरीकों के स्पष्टीकरण इत्यादि के लिए ज्ञान मीमांसा का चुनाव और मनोविज्ञान आवश्यक हैं। इसलिए यह संभव हो जाता है कि इस क्षेत्र में केंद्र एवं राज्य स्तरों पर निश्चित सामान्य सिद्धांत दिए जाने चाहिए, जिसमें जिला स्तर पर व्याख्याओं और कुछ नया जोड़ने के अवसर भी हों।

तीसरा अहम हिस्सा, पाठ्यचर्या का विवरण जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस पर मूर्त रूप से और विस्तार से कार्य करना पड़ेगा। इस खण्ड में, शायद पाठ्यक्रम

राज्य/ज़िला स्तर पर बनाया जा सकता है, ज़िला और स्कूल स्तरीय पुनर्गठन की उपलब्धता के साथ। इन मानदंडों के हिसाब से विधियाँ, सामग्रियाँ एवं मूल्यांकन के चुनाव स्कूल स्तर पर ही किए जाने चाहिए।

4. समूह की केंद्रीभूत स्थिति

4.1 प्रस्ताव

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के दस्तावेज़ों ने हमेशा एक लचीलेपन के लिए प्रचार किया है। पाठ्यचर्या के दस्तावेज़ों के तीन मुख्य भाग राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक मूल्य एवं शिक्षा का स्तर हैं। इस संदर्भ में 'पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें' पर बना राष्ट्रीय फोकस समूह एक ऐसी पाठ्यचर्या की रूपरेखा का प्रस्ताव रखता है जो-

- स्कूल एवं शिक्षकों को विषय के चयन, अध्यापन कला, सहशिक्षण सामग्री, मूल्यांकन आदि के विषय में निर्णय लेने हेतु स्कूल स्तर पर सहयोग देती है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा स्कूलों को अधिक स्वायत्तता देने और शिक्षकों को मननशील कार्यकर्ता बनने में मदद करती है जो अपने अनुभवों से सीख सकें।
- समझ के सीखना एवं अधिगम के लिए सीखने पर बल देती है।
- बच्चों को रोज़मर्रा की ज़िंदगी के अनुभवों के आधार पर अपनी समझ विकसित करने में सहायता करती है।
- विद्यालय एवं शिक्षकों द्वारा विद्यालयी व्यवस्था द्वारा जिसमें विभिन्न शिक्षण प्रशिक्षण एवं व्यवस्थागत ढाँचें शामिल हैं, एक सूचित निर्णय लेने के लिए साधन के रूप में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

4.2 पाठ्यचर्या के घटकों पर समूह के विचार

4.2.1 शिक्षा के सामान्य लक्ष्य

(I) *नीतियों, समितियों/आयोगों, रपटों में दिए गए लक्ष्य*

भारत की शिक्षा की सभी नीतियों एवं पाठ्यचर्या के दस्तावेज़ों में शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा अवश्य होती है। सबसे पहले हमेशा राष्ट्रीय चिंताओं एवं प्राथमिकताओं, एवं राष्ट्रीय निर्माण में शिक्षा की भूमिका का उल्लेख अवश्य होता है। सन् 1947 से जो मुख्य दस्तावेज़ रखे जा रहे हैं: विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन-यू.ई.सी.) 1948-49, माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53 की रिपोर्ट (सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन-एस. ई.सी.), शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (रिपोर्ट ऑफ एजुकेशन कमीशन-आर.ई.सी.) 1964-66, ईश्वर भाई पटेल पुनरावलोकन समिति (ईश्वर भाई पटेल रिव्यू कमेटी-आई. पी.आर.सी) 1970, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (नेशनल पॉलिसी ऑफ एजुकेशन-एन.पी.ई.) 1986, राष्ट्रीय शिक्षा नीति की पुनरावलोकन समिति (रिव्यू कमेटी ऑफ नेशनल पॉलिसी ऑफ एजुकेशन-एन.पी.ई.आर.सी.) 1990, शिक्षा बिना बोझ के (लर्निंग विदाउट बर्डन-एल.डब्ल्यू.बी.) 1993, और तीन पाठ्यचर्या की रूपरेखाएँ जो 1975, 1988 और 2000 में बनीं।

इन सभी दस्तावेज़ों के यदि शिक्षा के उद्देश्य देखे जाएँ तो बहुत से तथ्य सामने आते हैं। जैसे कि यू.ई.सी. में कहा गया-

> हमारे दिमाग में सामाजिक क्रम की एक संकल्पना होनी चाहिए जिसके लिए हम युवकों को शिक्षित कर रहे हैं ... हमारे शिक्षा तंत्र को सामाजिक क्रम के उद्देश्यों से ही मार्गदर्शक सिद्धांत निकालने चाहिए...
>
> हमारे सामाजिक दर्शन की सीमारेखा जिसे हमारी सभी संस्थाओं - शैक्षिक, आर्थिक एवं राजनीतिक को संचालित करना चाहिए, को हमारे संविधान की प्रस्तावना में दर्शाया गया है - हम, भारत के लोग, भारत को संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाला... हम न्याय, मुक्ति समानता के लक्ष्यों को साकार करते हुए लोकतंत्र की पहेली में व्यस्त हैं।

इनमें से प्रत्येक बिंदु के अंतर्गत आयोग ने लक्ष्यों के समूह प्रस्तुत किए।

> एस.ई.सी. अपने औचित्य का आधार 'प्रतिज्ञा' में दिए गए लक्ष्यों को भी मानती है (और यह भी संकेत देती है कि स्कूली शिक्षा नीति, विश्वविद्यालयी नीति से पहले आनी चाहिए थी!): भारत ने हाल ही में अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता अर्जित की है, बहुत विचार करने के बाद, अपने आप को निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र स्वरूप देने का निर्णय लिया। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा व्यवस्था को चरित्र के गुण, दृष्टिकोण तथा आदतें विकसित करने में अपना योगदान देना अनिवार्य है, जिससे इस देश के नागरिक सही ढंग से लोकतांत्रिक नागरिकता की ज़िम्मेदारी उठा सकें तथा उन सभी संदिग्ध गतिविधियों/प्रवृत्तियों के प्रभाव को कम कर पाएँ जो एक विस्तृत, राष्ट्रीय और निरपेक्ष दृष्टि को उभरने में बाधा डालती है ... यह स्पष्ट है कि हमें इन मुख्य व्यापक श्रेणियों के संदर्भ में अपने नियम स्वयं बनाने होंगे। चरित्र का प्रशिक्षण देना होगा ताकि विद्यार्थियों को उभरते लोकतांत्रिक सामाजिक क्रम में नागरिक के रूप में सृजनात्मकता के साथ भाग लेने के योग्य बनाया जा सके, उनकी प्रायोगिक तथा व्यावसायिक प्रवीणताओं में सुधार लाया जाए ताकि वे भी देश की आर्थिक संपन्नता बढ़ाने में भूमिका अदा कर पाएँ, और उनकी भाषायी, कलात्मक तथा सांस्कृतिक रुचियों का विकास किया जाए जो स्व-अभिव्यक्ति एवं मानवीय व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए अत्यंत ज़रूरी है।

ये दोनों दस्तावेज़ अपने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालय और उच्च माध्यमिक शिक्षा पर ये पहले नीतिगत दस्तावेज़ थे। दोनों ने ही भारत में बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नवीकरण और पुनर्गठन की ज़रूरत महसूस की है। इन दोनों ही दस्तावेज़ों में, अपने तरीके से शिक्षा के उद्देश्यों, उनके औचित्य, वे स्रोत जिन पर ये उद्देश्य आधारित होंगे और व्यापक श्रेणियाँ जिनमे ये उद्देश्य विभाजित होंगे ... पर विशेष ध्यान दिया है। शायद इसका कारण देश भर में फैली वह सामाजिक-राजनीतिक ऊर्जा थी जो पहली बार अपने मुक्त संविधान का निर्माण कर रही थी, शायद उन संघर्षों की याद जिन्होंने इस ऐतिहासिक क्षण को जन्म दिया अभी तक शिक्षा नीति निर्माणकर्ताओं के दिमाग में ताजा थी।

आर.ई.सी. (1964-66), विरोधाभासी तरीके से सामान्य शिक्षा प्रणाली द्वारा समानता अर्जित करने पर अर्थपूर्ण कथन देने के बावजूद, शिक्षा के उद्देश्यों पर अस्पष्टता देने वाला पहला नीतिगत दस्तावेज़ बन गई। "आई.पी.आर.पी. इन उद्देश्यों को बिल्कुल अलग नज़रिए से देखती है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा बनाई गई रूपरेखा को समझने के बाद और अनुच्छेद 45 में दिए गए संवैधानिक निदेशक को दिमाग में रखते हुए, जो कहता है कि राष्ट्र सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। हमें लगता है कि अनिवार्य स्तर की शिक्षा के उद्देश्य आवश्यक रूप से इस स्तर के बाद की शिक्षा के उद्देश्यों से अलग होने चाहिए।''

वर्ष 1986 तक, एन.पी.ई. ने शिक्षा के उद्देश्यों को और भी आयाम दिए। संविधान की रोशनी इसमें 'सामान्य केंद्रिक' की धारणा को सामने रखा जिसमें शामिल किया स्वतंत्रता संघर्ष का इतिहास, संवैधानिक बाध्यता, राष्ट्रीय अस्मिता को पोषित करने वाले ज़रूरी अवयव और साथ ही भारत की साझी संस्कृति, समतामूलकता, लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता, जेंडर की समानता, पर्यावरण की सुरक्षा, सामाजिक बाधकों से छुटकारा, छोटे परिवार का आदर्श, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और शैक्षिक अवसरों की समानता आदि को। कुछ चीज़ों को यूँ सूचीबद्ध करने के अलावा, यह जानना जरूरी है कि स्वयं के विकास पर ज़ोर था, जिसके लिए पहली दोनों नीतियाँ बहुत जागरूक थीं, और जिसको 1966 तक 'संसाधन' के रूप में पुनर्परिभाषित किया गया, आज उद्देश्यों के संदर्भ में उसका जिक्र तक नहीं होता। एक तरफ़ तो यह कहती है कि हम समानता के लिए कार्यरत हैं (उदाहरण के लिए महिलाओं की समानता, अतीत में हुए शोषण, अत्याचारों से मुक्ति दिलाने की शपथ) और दूसरी तरफ़ समाज के शोषित और पिछड़े वर्ग के लिए गैर-औपचारिक केंद्र खोल देते हैं। जहाँ पर बाल मजदूर/श्रमिक के रूप में काम करते बच्चे आ सकें (अगर वे थक कर सो न गए तो।) और शिक्षा के नाम पर कुछ संख्याएँ और अक्षर सीख सकें। इस प्रकार नीतिगत दस्तावेज़ों और रपटों में धीरे-धीरे उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करने पर महत्त्व कम होता नज़र आ रहा है।

(II) *पाठ्यचर्या ढाँचे के दस्तावेज़ों में निहित उद्देश्य*

सभी तीनों राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के ढाँचे वे सभी करना चाहते हैं जो कि सावधानी से तैयार किए गए सरोकारों के द्वारा लक्ष्य बिंदुओं में परिलक्षित होते हैं। ये सरोकार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये हमारे लिए हैं, समाज शिक्षा के लक्ष्यों को स्पष्ट बताने में बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं परंतु इनको इसी रूप में शैक्षिक मामलों में निर्णय लेने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता ।

फिर से, ये सारे दस्तावेज़ शिक्षा के लक्ष्यों के विषय में बात करते हैं (दस वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यक्रम 1975, स्तर-वार सामान्य उद्देश्यों की बात करता है पर शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों की नहीं) और इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक लंबी सूची दे देते हैं। हालाँकि ये सूची सहमति के नज़रिए से आसान होती है[5] पर इसकी विषयवस्तु बहुत ही विरोधाभासी और आगे के निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई औचित्य प्रदान नहीं करती।[6] इस तरह की सूची पढ़ाने के तरीके में भी कोई मदद नहीं करती क्योंकि दिए गए सिद्धांत इतने व्यापक नहीं होते और तार्किक क्षमता नहीं रखते। सामाजिक-राजनीतिक रूप से वे लोगों की अपेक्षाओं को प्रतिबिंबित करने में असफल रहते हैं।

(III) *शिक्षा के अच्छे लक्ष्यों के लिए कसौटियाँ और इनकी आवश्यकता*

सामाजिक-राजनीतिक मत : निर्धारित लक्ष्य जो सभी वर्ग के लोगों की सामूहिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हैं, लोकतंत्र में जो सभी के लिए अच्छा हो, ऐसे अपेक्षित सामाजिक जीवन की संकल्पना करने और उसे पाने की तरफ बढ़ने की क्षमताओं के विकास में मदद करते हैं। इससे कुछ मूल्यों पर संकेत जाता है। संविधान कुछ मूल्यों का वह संगठन है जिन्हें आज एक अलग नज़रिए से देखा जाता है। शिक्षा के दो दायित्व हैं : उन मूल्यों को समझना और इज़्ज़त देना और इसके आगे जाकर एक आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य विकसित करना। हालाँकि, शैक्षिक लक्ष्य संविधान से सुसंगत होने चाहिए, परंतु उनको केवल इसके आधार पर सही नहीं प्रमाणित किया जा सकता। इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज़ जैसे मानवीय अधिकारों की घोषणा और बाल-अधिकार सम्मेलन, मानवीयता के व्यापक दर्शन से निकलते हैं पर वे (1) किसी विशेष समाज के विशिष्ट दर्शन को पूर्ण रूप से नहीं दर्शा पाते। (2) अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं और शक्तियों द्वारा दूसरों को सजा देने या शर्मिंदा करने के यंत्र के रूप में इस्तेमाल होते हैं। (3) इनको भी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने की ज़रूरत है, इसीलिए शिक्षा के लक्ष्यों का प्रमाणीकरण एक विशिष्ट समय पर मानवीयता की दी गई परिभाषा को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।

शिक्षाशास्त्रीय मत : शिक्षा के लक्ष्य विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों और अन्य शैक्षिक संस्थानों को एक प्रतिरूप देते हैं। शैक्षिक उद्देश्य शिक्षक की वर्तमान की गतिविधि को खुशहाल भविष्य के फल से जोड़ने में मदद कर सकते हैं जिसमें वर्तमान में गतिविधि को साधन न बनाया जाए और बिना वर्तमान से अलग किए उसे एक दिशा मिल जाए। जॉन डीवी के अनुसार, "लक्ष्य पहले से ही देखा हुआ अंत होता है जो किसी क्रिया को दिशा देता हैं। यह किसी दर्शन की बेकार की सोच नहीं है बल्कि यह उन सोपानों को प्रभावित करती है जो अंत तक पहुँचने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। यह दूरदर्शिता तीन तरीकों से कार्य करती है। पहले स्थान पर इसमें दी गई परिस्थितियों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना होता है, यह देखने के लिए कि अंत तक पहुँचने के लिए कौन से साधन उपलब्ध हैं। रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को पहचानने के लिए भी" स्कूल के संदर्भ में इसका अर्थ है उन बच्चों की क्षमताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन जो कि छह वर्ष की आयु के हैं और वे किन सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में हैं। दूसरे स्थान पर, जैसा कि डीवी कहते

---

[5] *जॉन वाइट, न्यू एम्स फॉर ए न्यू नेशनल करीकुलम, इन द नेशनल करीकुलम बीयॉन्ड 2000: द क्यू.सी.ए. एंड द एम्स ऑफ़ एजुकेशन, इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन, 1998*

[6] *रोहित धनकर, ऑन करीकुलम फ्रेमवर्क, सेमिनार, अंक-493, सितंबर 2000, नयी दिल्ली।*

हैं, "दूरदर्शिता यह सुझाव भी देती है कि साधनों के इस्तेमाल का उपयुक्त क्रम क्या होना चाहिए। यह आर्थिक चुनाव और प्रबंध में भी सहयोग देती है।" स्कूलों के लिए इसका अर्थ है कि क्या पढ़ाया जाए और किस क्रम में पढ़ाया जाए, इसके बारे में निर्णय लेना। तीसरे स्थान पर "यह विकल्पों के चुनाव को संभव बनाती है अगर हम ये पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि किसी तरीके से काम करने पर ऐसा परिणाम होगा तब हम उन दोनों तरीकों के मूल्यों की आपस में तुलना कर सकते हैं। उनकी सापेक्षिक अपेक्षा पर राय दे सकते हैं। यह हमें चुनाव की कसौटी देता है। इस संबंध में डीवी यह घोषणा करते हैं, "अंतिम निष्कर्ष यह है कि किसी लक्ष्य के साथ काम करने का अर्थ है बुद्धिमतापूर्वक काम करना।" (जॉन डीवी, *लोकतंत्र और शिक्षा* अध्याय 8 भाग 1, "लक्ष्य की प्रकृति")

(IV) *हम क्या प्रस्ताव रखते हैं*

लक्ष्यों की अभिव्यक्ति दो प्रयोजन पूरे करती है - पूरे शैक्षिक प्रयास को सामाजिक आकांक्षाओं से जोड़ना और प्रत्येक गतिविधि को एक दिशा देना। हमने उद्देश्यों के आधार की चर्चा मान्यताओं वाले भाग में की है और क्योंकि यह दस्तावेज़ एक आधार पत्र है यहाँ लक्ष्यों को सिद्धांतों की तरह प्रस्तुत किया गया है और कोई विस्तारित व्याख्या नहीं दी गई है।

दो भागों में अभिव्यक्ति

(अ) मूल्य एवं आदर्श - जिन्हें शिक्षा को समाज में बढ़ावा देना चाहिए और जिनसे विद्यार्थी में एक तार्किक प्रतिबद्धता आए, वे हैं : -

- *समानता* - स्तर और अवसरों की समानता
- *स्वतंत्रता* - विचार, अभिव्यक्ति, आस्था और उपासना की स्वतंत्रता
- *वैचारिक स्वायत्तता* - तर्क-आधारित विचारों की स्वतंत्रता
- *कार्य की स्वायत्तता* - चयन की स्वतंत्रता, निर्णय की योग्यता और स्वतंत्रता तथा उन पर कार्य करने की क्षमता और स्वतंत्रता
- *दूसरों का सम्मान एवं चिंता* - अपनी स्वयं की स्वतंत्रता और स्वायत्तता से आगे बढ़कर समाज के सभी वर्गों की स्वायत्तता, सरोकार और उनके प्रति संवेदना
- *न्याय* - सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक

शिक्षा विद्यार्थी को न केवल इन मूल्यों से खुशी लेना सिखाए बल्कि दूसरों की समानता, आज़ादी और स्वायत्तता की इज़्ज़त करनी भी सिखाए।

(ब) मनुष्य की क्षमताएँ - जो अभिव्यक्त मूल्यों और आदर्शों के विकास में मदद कर सकती हैं -

- *ज्ञान का आधार :* पर्याप्त रूप से विस्तृत ज्ञान का आधार होना चाहिए जिसमें सामाजिक-राजनीतिक जीवन के सभी निर्णायक क्षेत्र शामिल हों और ज्ञान की खोज़ तथा वैधीकरण के सभी मूलभूत तरीके भी।
- *दूसरों के प्रति संवेदनशीलता:* ज्ञान के साथ जुड़ी हुई दूसरों के कल्याण और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता को मूल्यों के प्रति विवेकपूर्ण प्रतिबद्धता का आधार होना चाहिए। 'दूसरों' के अंतर्गत शामिल हैं जीवन के सभी रूप।
- *तार्किक/आलोचनात्मक रवैया:* सोच और कार्य में स्वायत्तता लाने का एक ही तरीका है, आलोचनात्मक समझ।
- *अधिगम के लिए सीखना:* ज्ञान, तर्क, संवेदनशीलता और कौशलों के विकास की भविष्य की ज़रूरतों को पहले से ही निर्धारित नहीं किया जा सकता, इसलिए नयी परिस्थितियों में नयी ज़रूरतों के उभरने पर सीखने की योग्यता आवश्यक है ताकि लोकतांत्रिक समाज में स्वायत्त ढंग से कार्य किया जा सके।
- *कार्य और आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदारी की योग्यता:* जीवन में चुनाव और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी की योग्यता निर्भर करती है समाज में विभिन्न कार्यों में योगदान देने की योग्यता पर।
- *सौंदर्यपरक सराहना/सृजन:* सुंदरता की सराहना और कला के रूप मानवीय जीवन के अंतरंग भाग हैं।

4.2.2 *स्तरानुसार शिक्षा के सामान्य उद्देश्य*

स्तर के अनुसार उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए शिक्षा के

सामान्य उद्देश्यों, बच्चों के विकास के चरण, ज्ञान की प्रकृति एवं बच्चे के सामाजिक-राजनीतिक परिवेश को ध्यान में रखना होगा। ये विषय केवल विशिष्ट ज्ञान के रूप में नहीं हो सकते। यहाँ पर उद्देश्य शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों की ज़्यादा स्तर विशिष्ट व्याख्या होगी। इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति क्षमताओं, मूल्यों, अभिवृतियों और ज्ञान के संदर्भ में होगी। उद्देश्यों को पर्याप्त रूप से विशिष्ट भी होना होगा जिससे वे विषयवस्तु के चयन एवं संगठन में निर्देश दे पाएँ।

पाठ्यचर्या के उद्देश्यों की अभिव्यक्ति के लक्ष्यों के कथनों से संकेत लेना चाहिए और ये प्रत्येक चरण के लिए दो भागों में लिखे जा सकते हैं। चरणों को ऐसे परिभाषित किया जा सकता है -

1. *प्राथमिक* - I : 2 साल की विद्यालयी शिक्षा, औसतन 5-7 वर्ष की आयु
2. *प्राथमिक* - II : 3-5 साल की विद्यालयी शिक्षा, औसतन 8-11 वर्ष की आयु
3. *उच्च प्राथमिक:* 6-8 साल की विद्यालयी शिक्षा, औसतन 12-14 वर्ष की आयु
4. *माध्यमिक:* 9-10 साल की विद्यालयी शिक्षा, औसतन 15-16 वर्ष की आयु
5. *उच्च माध्यमिक:* 11-12 साल की विद्यालयी शिक्षा, औसतन 17-18 वर्ष की आयु

साल के हिसाब से उद्देश्यों के विभाजन की ज़रूरत नहीं है। उद्देश्यों की चरणवार उपलब्धि ही काफी होगी। अगर ज़रूरत हो तो पाठ्यक्रम को आगे विभाजित किया जा सकता है। हालाँकि चरण के हिसाब से पाठ्यक्रम विद्यालय एवं शिक्षकों को ज़्यादा आज़ादी और विकल्प देगा।

प्रत्येक चरण का पहला भाग सामान्य लक्ष्यों के संबंधित भागों से आशय निकाले। उदाहरण के लिए प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक चरण के अंत में लोकतांत्रिक मूल्य क्या रूप लेंगे इत्यादि। भाग दो में अपेक्षित अधिगम के स्तर कथित होने चाहिए। ये स्तर संबंधित चरण के पहले भाग की अपेक्षित उपलब्धियाँ होनी चाहिए।

आखिरी चरण (उच्च माध्यमिक) को छोड़कर बाकी सभी चरणों की पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को ज़िला एवं राज्य स्तर पर बनाया जाना चाहिए और हरेक विद्यालय उन्हें अपने बच्चों एवं अध्यापिकाओं की ज़रूरत के अनुसार पुनः संगठित कर सकता है।

4.2.3 *विषयवस्तु के चुनाव और संगठन के सिद्धांत*

पाठ्यचर्या नियोजन में सबसे ज़्यादा माँग नए विषय बनाने, नए मुद्दे जोड़ने और विभिन्न समूहों की रुचि वाली सामग्री को जोड़ने की रही है। यह लोकतंत्र में एक स्वस्थ प्रवाह है क्योंकि ये लोगों की शिक्षा से जुड़ी उम्मीदों को अभिव्यक्त करती है और पाठ्यचर्या नियोजन को एक विवादित क्षेत्र की तरह देखती है जो बातचीत द्वारा समझौते के लिए खुला है। लेकिन विषयवस्तु के चुनाव और संगठन के लिए परिभाषित आधारों की अनुपस्थिति में यह माँग बड़ी समस्या बन सकती है और आज हम इसी स्थिति का सामना कर रहे हैं। दूसरे, पाठ्यचर्या के बोझ की समस्या दरअसल सूचना के अव्यवस्थित ढेर की समस्या है क्योंकि इसमें जाँच पड़ताल एवं समझ के लिए प्रत्ययात्मक रूपरेखाओं, और संगठन के सिद्धांतों की अनुपस्थिति है। इन दोनों समस्याओं पर शिक्षाशास्त्रीय एवं मानकों के दृष्टिकोण से ज़्यादा विवाद किया जाता है। सामाजिक सार्थकता का तीसरा परिप्रेक्ष्य कुछ ही मुद्दों के लिए उभर कर आता है।

सामाजिक दृष्टि एवं ज्ञान मीमांसा के मुद्दों में इस विवाद में मध्यस्थता करने की बहुत क्षमता है पर इस क्षमता पर अभी तक ज़्यादा काम नहीं हुआ है। विषयवस्तु के चयन एवं संगठन की कसौटियों को इन पहलुओं को ध्यान में रखना होगा और उपरोक्त समस्याओं के कुछ उपाय सुझाने होंगे।

विद्यालयी पाठ्यचर्या को ज़्यादातर विभिन्न विषयों में व्यवस्थित किया जाता है। विषयों का खुद का आधार परंपरा एवं विषयी ज्ञान है। हालाँकि पाठ्यचर्या की विषय आधारित व्यवस्था की स्वीकृति है पर इसकी भी आलोचना होती है क्योंकि यह ज्ञान को खानों में सख्ती से बाँधती है। ज्ञान का यह उल्लिखित विखंडन, बच्चे की सांसारिक दृष्टि से अनुपयुक्त है। एक और जुड़ी हुई समस्या नए विषयों को शामिल करने या मौजूदा विषयों के पुनः संगठन में पर्याप्त आधार की है। फिर ये मुद्दे हैं कि

पाठ्यचर्या में क्या शामिल किया जाए और चयनित सामग्री की क्रमिकता पर हमेशा विवाद होता है। कई लोग पाठ्यचर्या के बढ़ते बोझ का कारण इन मुद्दों पर विकल्पों के चुनाव की कसौटियों में अस्पष्टता मानते हैं।

संक्षेप में, विषय क्षेत्रों के आधार के मुद्दे, पाठ्यचर्या में विषय क्षेत्रों को शामिल करना, प्रत्येक विषय क्षेत्र में विषयवस्तु का चुनाव और उसे क्रमानुसार लगाना, समकालीन पाठ्यचर्या, थीम आधारित शिक्षण, शिक्षण के समय और अंक निर्धारण के अनुसार विषय क्षेत्रों को सापेक्षिक महत्त्व देना और पाठ्यचर्या बोझ ये सभी पाठ्यचर्या ज्ञान के संगठन और चुनाव की कसौटियों से संबंधित हैं।

यहाँ पर यह सुझाव दिया जाता है कि पाठ्यचर्यी ज्ञान के चुनाव एवं संगठन की समस्या को कम से कम चार परिप्रेक्ष्यों से देखने की ज़रूरत है : *शिक्षा के लक्ष्य, ज्ञान मीमांसीय परिप्रेक्ष्य, बच्चों का अधिगम एवं मानसिक विकास* और *बच्चे का परिवेश*। इन सब पर संक्षिप्त दृष्टि यहाँ पर काफ़ी उपयोगी होगी।

शिक्षा के लक्ष्य

विद्यार्थी क्या सीखें यह मुद्दा सीधा उप परिणाम है इस मुद्दे का कि उनसे क्या प्राप्ति की उम्मीद है। दूसरे शब्दों में 'क्या पढ़ाने लायक है' यह इसी मुद्दे से निकला है कि शिक्षा में 'कौन से लक्ष्य अनुसरण करने योग्य हैं'। पढ़ाने के लिए चयनित विषयवस्तु का आधार निश्चय ही उद्देश्यों को शामिल करेगा। शिक्षा के लक्ष्य समाज की अपेक्षित सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से निर्देशित होते हैं। शिक्षा के लक्ष्य अभिव्यक्त करते हैं (अ) व्यक्ति की क्षमताएँ एवं मूल्य जो कि अभीष्ट समाज के लिए अनिवार्य समझे जाते हैं। (ब) समाज के सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि के सिद्धांत जिनको चरितार्थ करने में शिक्षा से मदद की उम्मीद होती है क्योंकि ज़्यादातर लक्ष्यों का एक समूह होता है, न कि शिक्षा का एक लक्ष्य। इससे यह आशय निकलता है कि विषयवस्तु का चयन पूरे समूह के साथ न्याय करे इसीलिए पाठ्यचर्या के विकल्पों के चयन में व्यापकता एवं संतुलन बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। इस परिप्रेक्ष्य से पाठ्यक्रम को ऐसे अनुभव चुनने चाहिए जो ज्ञान का आधार खड़ा करें, विवेकपूर्ण तरीके से सोचने की क्षमता बढ़ाएँ, अधिगम की योग्यता दें, काम करने की क्षमता और आर्थिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की क्षमता का विकास करें। यह दूसरों के प्रति संवेदनशीलता तथा सौंदर्यपरक सराहना भी बढ़ाएँ। ये सभी उपयुक्त हैं न्याय, दूसरों की इज़्ज़त और देखभाल, क्रिया की स्वायत्तता, आज़ादी तथा समानता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति एक विवेकपूर्ण प्रतिबद्धता के विकास में।

हालाँकि सामान्यता के इस स्तर पर आधार की अभिव्यक्ति मूर्त रूप में पर्याप्त मार्ग-निर्देशन नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए, अगर हम 'तार्किक रूप से सोचने की क्षमता के विकास' को लें तो ये सूचना एकत्र करके उसे समझने, ज़्यादा से ज़्यादा संभव परिप्रेक्ष्यों के संदर्भ में विचार, तार्किक विवेचन में अच्छी-खासी निपुणता, असंगति एवं असंगतता को पहचानने की क्षमता एवं असंगति को दूर करने के रवैये की तरफ़ इशारा करती है। लेकिन यह अभी भी अनुत्तरित प्रश्न है कि विशिष्ट जानकारी, अनुभवों एवं सिद्धांतों का कौन-सा समूह इन क्षमताओं के विकास में मदद कर सकता है। अगर इस सिद्धांत को असल में पाठ्यचर्या के विकास में इस्तेमाल करना है तो कई प्रत्ययात्मक उपकरणों की जानकारी, सिद्धांतों पूर्वधारणाओं की ज़रूरत है। पूर्ववर्ती विचार इन उपकरणों के कुछ हिस्से प्रदान करेंगे।

ज्ञान मीमांसा से जुड़े विचार

अपने आप में ज्ञान की प्रकृति पाठ्यचर्या के ज्ञान के चुनाव एवं संगठन में सबसे ज़्यादा प्रभावशाली कारक है। अगर ज्ञान को एक तैयार उत्पाद एवं बच्चे को स्थानांतरित की जाने वाली सूचनाओं के भंडार के रूप में देखें तो वह फौरन ही महत्त्वपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं की माँग करती है। एक तो वह मानवीय ज्ञान के एक वृहत् कोष की माँग करती है (सभी विषय क्षेत्र और विश्व कोष)। विषयों की सीमा को शक्ति एवं परंपरा पर आधारित प्रामाणिकता मिल जाती है। इस प्रामाणिकता में वे दक्ष

लोग भी शामिल हैं जिन्होंने विषयी ज्ञान का सृजन किया। पाठ्यपुस्तक, ज्ञान का एक पैकेज बन जाती है जो विशिष्ट समयावधि में एक के बाद एक स्थानांतरित करने के लिए बनाई जाती है। किसी उच्च सिद्धांत के बिना सूचनाओं का बढ़ता हुआ प्रवाह अवरोध का कारण बनता है क्योंकि इन्हें एक सीमित समयावधि में बच्चे के मस्तिष्क में जगह बनानी है। मानसिक दुविधा की सबसे अच्छी युक्ति के साथ उस सारी जानकारी को पकड़ने के प्रयास किए जाते हैं जो भार का एक जरिया बनते हैं और वे एक तरफ़ पुराने विषयों के सख्त अनुसरण का कारण बनते हैं तो दूसरी तरफ नए आकर्षक विषयों को बढ़ाने के तर्क का कारण।

ज्ञान को अंतिम उत्पाद की तरह देखा जाता है जिसे कि बच्चे के मस्तिष्क में डालना है और सीखने वाला एक निष्क्रिय ग्रहणकर्ता है, इस अवधारणा को बढ़ावा देना है। आगे बढ़ें तो यह इस विचार को प्रोत्साहित करता है कि ज्ञान को बिना समझे प्राप्त किया जा सकता है और उसको बिना उपयोग की क्षमता के विकास के समझा जा सकता है। इसीलिए ज्ञान को विशिष्ट शब्दों के व्याकरणीय रूप से सही इस्तेमाल तक सीमित कर दिया जाता है जो समझ, चिंतन और सार्थकता से वंचित होता है।

वैकल्पिक रूप में हम ज्ञान की संकल्पना को अनुभव की तरह ले सकते हैं जिसका संगठन मुख्यत: भाषा के माध्यम से हुआ है, मुख्यत: विचारों के प्रतिरूप में जिससे अर्थ उत्पन्न होता है और जो हमें हमारे संसार को समझने में मदद करता है। समय के साथ, मनुष्य ने इस अर्थ में ज्ञान के भंडार की दौलत, सोचने के तरीकों और ज्ञान सृजन के खजाने को विकसित किया है। मानवीय विचार के क्षेत्र में हर नए प्रवेश पाने वाले को इस सौगात का एक महत्त्वपूर्ण भाग अपने दिमाग में पुन: सृजित करना होगा। ये महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि एक तो - आगे विचार के आधार के लिए और इस संसार में उपयुक्त रूप से कार्य करने के लिए, दूसरा - ज्ञान सृजन, अर्थ निकालने एवं मानव कर्म की प्रक्रिया में भागीदारी के तरीके सीखने के लिए। ज्ञान की यह संकल्पना हमें इस बात की आज्ञा देती है कि हम उस ज्ञान के भंडार की इज़्ज़त करें जिसका सृजन उसके संगठन एवं सृजन के सिद्धांतों के साथ हुआ है और साथ ही वह अन्य विकल्पों और बेहतर सिद्धांतों की खोज के लिए महत्त्वपूर्ण तरीके से लचीला है।

ज्ञान ग्रहण करने की प्रक्रिया विद्यार्थी के सक्रिय ज्ञान सृजन की प्रक्रिया बन जाती है। पाठ्यपुस्तक तो एक ऐसा साधन बनती है जो उदाहरण, संकेत, अनुसरणीय कार्यक्रम एवं सिद्धांतों का परिचय प्रदान करती है। आम सिद्धांतों की रोशनी में बढ़ी हुई जानकारी का प्रवाह एक रुचि का विषय बन जाता है जिसमें ज्ञान का मौजूद भंडार शामिल हो जाता है। और साथ ही सिद्धांतों के पुन: मूल्यांकन एवं पुन:संगठन की चुनौती ज़रूरी हो जाती है जिससे नई जानकारी को बेहतर रूप से समझा जा सके। इससे जानकारी का बढ़ा हुआ प्रवाह रोशनी फैलाने वाला होता है न कि डराने वाला। ज्ञान की यह वैकल्पिक संकल्पना अगर आधार बने तो विषयों को न समझ पाने की समस्या को काफ़ी हद तक घटाया जा सकता है एवं जानकारी हो जाती है कि कौन-सा विकल्प चुना जाए और कौन-सा नहीं। यह भी पता चल जाता है कि बदली हुई ज्ञान की अवधारणा के इस आधार के साथ क्या संभव नहीं है।

ज्ञान के इस परिप्रेक्ष्य से ज्ञान सृजन के तरीकों और उनकी प्रामाणिकता की पकड़, संगठन, निर्णय लेने एवं कार्य पर उसका असर यह सब बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं अगर शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति करनी हो न कि जानकारी का व्यापक भंडार इकट्ठा करना हो। यह इस ओर इशारा करता है कि अवलोकन, संवेदना, मननशीलता, कार्य और ज्ञान ग्रहण के तरीके के रूप में ज्ञान बाँटने के द्वारा संसार से गतिशील जुड़ाव किया जा सकता है।

पाठ्यचर्या के प्रयोजन के लिए, शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु महत्त्वपूर्ण क्षमताओं को इस प्रकार संगठित किया जा सकता है :

1. आधारभूत क्षमताएँ : जो सारे अधिगम, सार्थक भागीदारी एवं सामाजिक जीवन के अनुभवों का आधार बनती हैं।

(अ) *भाषा* : यह सभी प्रकार के मानवीय अर्थ निर्माण को आधार देती है, इसलिए समझ और ज्ञान के विकास

की संभावनाओं का सृजन करती है। यह इस प्रकार की योग्यता प्रदान करती है कि सभी प्रकार के ज्ञान का संकेतीकरण किया जाए परंतु किसी भी प्रकार के ज्ञान को यह पूर्णत: अपनी जागीर नहीं समझती। किसी बच्चे के लिए भाषा का विकास दरअसल समझ, अस्मिता और वृहत रूप से आरंभिक अवस्थाओं के पश्चात् दूसरों से संबंध बनाने की योग्यता का विकास है। निष्पत्ति कलाओं तथा साहित्य के व्यावहारिक पहलू का एक बड़ा हिस्सा सभी प्रकार के अर्थ निर्माण के आधार से बहुत नज़दीक से जुड़ा होता है।

(ब) *संबंध बनाना:* संबंध बनाने का अर्थ सामाजिक विकास भी हो सकता है, जिसे कुछ तर्कों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। परंतु इसे प्राकृतिक संसार एवं व्यक्तित्व के पहलुओं से जोड़ना भी ज़रूरी है, यद्यपि यह सामाजिक संबंधों पर निर्भर हो सकता है। अपनी स्वयं की एक खुशबू के साथ। यह क्षेत्र है स्व-अस्मिता के निर्माण करने का दूसरों के साथ संबंध बनाने का, भावनात्मक समृद्धि, संवेदना तथा मूल्यों का।

(स) *कार्य और कार्यान्वयन की योग्यताएँ:* यह योग्यताओं के विस्तार के एक समुच्चय के समान है जिसमें शारीरिक कौशल, मूल्य तथा समझ शामिल हैं। ललित कलाओं का व्यावहारिक पक्ष इस क्षेत्र का एक सार्थक भाग होना चाहिए।

समझ के रूप

ज्ञान का संगठन पाठ्यचर्या उद्देश्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है जैसे कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं। ज्ञान मानव मस्तिष्क की रचना है। इसमें आवश्यक रूप से अनुभव, अवधारणा का निर्माण, जाँच पड़ताल और वैधीकरण के तरीके शामिल होते हैं। दूसरे शब्दों में, इन सबका अर्थ है ज्ञान के लिए किसी प्रकार का आनुभविक आधार होना। इस अनुभव को दूसरों के साथ बाँटने वाला और बोधगम्य बनाया जा सकता है, भाषा के माध्यम से जिसमें अवधारणाओं का उपयोग भी शामिल होता है। अगर किसी को दिए गए ज्ञान आधार में कोई रिक्तता दिखाई पड़ती है तो नए प्रश्न सामने आते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर अनायास ही नहीं दिया जा सकता। इनका संतोषजनक उत्तर पाने के लिए जाँच-पड़ताल करनी पड़ती है। इसलिए धीरे-धीरे ज्ञान का निर्माण करने के लिए जाँच-पड़ताल के तरीकों को पूर्वनिर्धारित करना पड़ता है। ज्ञान के सभी दावे अपने-आप वैध होते हैं ऐसा नहीं माना जा सकता; किसी तरह से भी उनकी जाँच करनी पड़ती है इसलिए वैधीकरण की विधियों की आवश्यकता होती है। अत: हमारा पहले किया गया यह दावा सही है कि ज्ञान के निर्माण के लिए आवश्यकता होती है: अनुभवों, अवधारणा निर्माण, जाँच-पड़ताल की विधियों और वैधीकरण के तरीकों की।

यदि हम चाहते हैं कि बच्चे विवेकपूर्ण ढंग से स्वतंत्र हों तो शायद उनके लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपने प्रारंभिक ज्ञान-आधार के साथ-साथ ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को आत्मसात करें। अभी तक हमारी शिक्षा व्यवस्था में ज़्यादा ज़ोर ज्ञान-आधार पर है; जिसे अपर्याप्त ढंग से सूचनाओं का संग्रह माना जाता है। अगर हम चाहते हैं कि ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया और संगठन के सिद्धांतों पर बल दिया जाए तो शायद हमें अपने बच्चों को पाठ्यचर्चा के माध्यम से जहाँ तक संभव हो सके, व्यापक अनुभव देने पड़ेंगे। इस दृष्टि से सृजनात्मकता के विकास और सोच तथा कर्म में स्वतंत्रता के विकास के लिए पाठ्यचर्या की विषयवस्तु के चुनाव और संगठन का मुद्दा बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

यहाँ पर एक अर्थपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या इस चुनाव की एक विवेकपूर्ण कसौटी हो सकती है। या इसे सदा ही अनायास और मनमाने ढंग से चुना जाए? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें यह देखना होगा कि क्या मानवीय ज्ञान को उन चार कसौटियों जो हमने ऊपर दी हैं, के आधार पर संगठित करना संभव है। ये कसौटियाँ हैं, अनुभव, अवधारणाएँ, जाँच-पड़ताल की विधियाँ और वैधीकरण के तरीके। दूसरे शब्दों में : क्या गणित में इसी तरह के अनुभव, अवधारणाएँ, विधियाँ और वैधीकरण शामिल हैं जैसा कि इतिहास में होता है। क्या यहाँ पर अवधारणाओं और वैधीकरण के तरीकों में जो कि विज्ञानों में इस्तेमाल किए जाते हैं और दूसरी और नीतिशास्त्रों में मूलभूत अंतर है?

इसका उत्तर हाँ है, यहाँ मूलभूत अंतर हैं, परंतु इन कसौटियों पर आधारित संगठन की योजनाएँ एक से ज़्यादा हो सकती हैं। हम यहाँ यह सुझाव दे रहे हैं कि पाठ्यचर्या में इस तरह की एक अथवा अन्य योजना के बारे में पहले से ही विचार बना लेना चाहिए, बिना इसके विषयवस्तु के चुनाव और संगठन का आधार नहीं बनेगा। यह शोध और गंभीर अध्ययन का मुद्दा है कि संगठन की ऐसी योजना कैसे बनाई जाए? वर्तमान में पूरी तरह से संतोषजनक योजना उपलब्ध नहीं है परंतु यह निश्चित ही संभव है कि एक कार्यकारी परिकल्पना बनाई जाए। हम इस तरह की एक योजना नीचे उदाहरण के तौर पर दे रहे हैं। इसमें मानवीय ज्ञान को समझ के साथ सात मूल रूपों में व्यवस्थित किया गया है। समझ के मूलरूप का अर्थ है कि समझ के प्रत्येक रूप की अपनी अलग विशेषता है। अवधारणाओं, वैधीकरण के तरीकों और जाँच-पड़ताल की विधियों के संदर्भ में जो कि दूसरे रूपों में पूरी तरह से नहीं सिमट सकती। इसका यह भी मतलब है कि यह अंतर बहुत सार्थक है समाज को समझने के तरीकों और स्वतंत्र चिंतन के विकास के लिए। इसके साथ ही यहाँ यह भी जोड़ा जा सकता है कि जैसी कि मानवीय समझ की आज स्थिति है प्रस्तावित योजना, उन सभी को तो नहीं परंतु ज़्यादातर अवयवों को शामिल करती है इसलिए इसे पाठ्यचर्या से संबंधित निर्णय लेने के लिए एक उपकरण की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है, जब तक कि हमारे पास अच्छी योजना उपलब्ध न हो।

इस योजना को हम प्रस्तुत करें इससे पहले हम इस बात पर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि समझ के जिन रूपों को नीचे समझाया गया है वे न तो विश्वविद्यालयी विषय हैं और न ही स्कूली विषय। ये तो बस कुछ मूल तरीके हैं संसार को देखने और अनुभवों को संगठित करने के लिए। हम योजना को संक्षिप्त में प्रस्तुत करने के पश्चात फिर इस बिंदु पर लौटेंगे। ज्ञान संगठन की इस योजना के अंतर्गत समझ के साथ मूल रूप में आते हैं जो हैं: गणित, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, सौंदर्यशास्त्र, नीतिशास्त्र और दर्शनशास्त्र। इन्हें नीचे सारणी के रूप में दिया गया है। कोशिश की गई है कि ये संक्षिप्त हों और स्पष्ट हों। ये पूरी योजना मुख्यत: निर्भर है पी.एच. हर्स्ट[7] और आर.एफ. डियरडन[8] के कार्यों पर। परंतु इसमें मूल

समझ के रूप[9]

क्रम संख्या	रूप	विषयवस्तु एवं अवधारणाएँ	कसौटी	अनुसंधान	निश्चितता/शुद्धता विधि
1.	गणित	बहुत ही अमूर्त अवधारणाएँ, स्पष्ट अवधारणात्मक संबंध	सूक्तियों, परिभाषाओं और स्वीकृत प्रमेयों के आधार पर तार्किक निगमन	क्रमवार तार्किक निगमन	निरपेक्ष, अति सुस्पष्टता
2.	प्राकृतिक विज्ञान	प्राकृतिक घटनाएँ, वर्णन, व्याख्या, आकस्मिक संबंध, अवधारणाओं की व्याख्या, अनुभवों की व्याख्या अनुभव आधारित	गणितीय कसौटी का इस्तेमाल परंतु अकेले अपर्याप्त आनुभविक अवलोकन (प्रकृति का) ज़रूरी है।	परिकल्पना निर्माण को शामिल करना, पुर्वानुमान की तार्किक व्युत्पत्ति, पूर्व अनुमानों की आनुमानिक जाँच के तरीके निभाना। परिकल्पनाओं की समीक्षा।	भ्रम का प्रवेश विज्ञान की मज़बूती है न कि कमज़ोरी। कार्यवाही के निश्चित रूप निश्चितता कार्यवाही के लिए काफी हैं, समीक्षा को भूलने के लिए काफी नहीं हैं बहुत ही सटीक।

7. *लिबरल एजुकेशन एंड द नेचर ऑफ़ नॉलिज इन एजुकेशन एंड डैवलपमेंट ऑफ़ रीज़न, आर. एफ. डियरडन, पी.एच. हर्स्ट एंड आर.एस. पीटर्स द्वारा संपादित, रूटलेज एंड कीगन पॉल, लंदन।*
8. *द फिलॉस्फी ऑफ़ प्राइमरी एजुकेशन, आर. एफ. डियरडन, रूटलेज़ एंड कीगन पॉल, लंदन।*
9. *रोहित धनकर, एन एप्स्टीमोलोज़िकल पर्सपैक्टिव ऑन स्कूल करिकुलम, इस्ट-वेस्ट फिलॉस्फरस् कॉन्फ्रेंस, हवाई यूनिवर्सिटी होनोलुलू, 2005 में यह पत्र प्रस्तुत किया गया था।*

3.	सामाजिक विज्ञान	सामाजिक घटनाओं का वर्णन, व्याख्या आकस्मिक संबंध हाँ, लेकिन मानव मस्तिष्क की बुद्धिसंगत व्याख्या एवं कारण प्रवेश करते हैं। अवधारणाएँ अनुभवों की व्याख्या करती हैं। आनुभविक आधार मानवीय उद्देश्य और कल्याण महत्वपूर्ण हो जाते हैं यथार्थ को बदलने के लिए समझ।	विज्ञान में उपयोगी विधियाँ, मानव के आदर्शों और चुनावों से प्रेरित कार्य	वैज्ञानिक कारणों के साथ-साथ मानवीय कारणों की खोज़ को जाँच की वस्तुओं की तरह नहीं समझना चाहिए। सही अवलोकन यथार्थ को बदल सकता है।	पैटर्नों, अनिश्चित चलनों, पूर्वानुमान और पुनरावलोकन के लिए पर्याप्त अवसर। मानवीय संसार के लिए उपर्युक्त परिशुद्धता।
4.	इतिहास	भूतकालिक घटनाओं, प्रमाणों के आधार पर वृत्तांतों का निर्माण	सामाजिक विज्ञान की विधियों का उपयोग करना परंतु तुलनात्मक रूप से विधियों के मानकों और शोध कर्ताओं के समुदायों के बीच मतों के प्रति वैधीकरण	प्रमाणों के आधार पर वृत्तांतों का निर्माण, तथ्य स्वयं ही स्थापित होते हैं, वृत्तांतों का निर्माण तथ्यों की रचना से अलग नहीं है। दूसरी दूरवर्ती दिमागों, समय में प्रक्षेपण... मानवीय उद्देश्यों के संदर्भ में भाषांतरण एक के विचारों का दूसरों के विचारों के निर्माण में प्रक्षेपण	सबसे ज्यादा संभावित सत्य, महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान दिन के लिए विवरण सुसंगत होना चाहिए और इसके साथ समृद्ध होना चाहिए।
5.	नीतिशास्त्र	मूल्य (नैतिक), क्रियाएँ, कारण, अवधारणाएँ और संबंध	स्वीकृत ज्ञान, मूल्य मानव-कल्याण और तर्क	खूबियों और खामियों को तौलना, तर्क	निर्णय लेने में कठिनाई। खुले विकल्प, विवादित दावे।
6.	सौंदर्यशास्त्र	मूल्य (सौंदर्यात्मक) कारण, अवधारणाएँ और संबंध	स्वीकृति ज्ञान, मूल्य मानव-कल्याण और तर्क, सौंदर्यात्मक अनुभव तर्क	यहाँ मुद्दा रचना का है खोज का नहीं है। रचना की पहले से निर्धारित विधियाँ नहीं होतीं।	ज़्यादा खुले विकल्प, निर्णय लेने में बहुत अधिक कठिनाई
7.	दर्शनशास्त्र	उपरोक्त सभी	उपरोक्त सभी	उपरोक्त सभी	जाँच-पड़ताल के तहत आने वाले मुद्दों पर निर्भरता

विचारों को बहुत सार्थक ढंग से सुधारा भी गया है। यहाँ पर विचार केवल बिंदु की व्याख्या करने वाला है। यहाँ पर इसका स्थान उपलब्ध नहीं है कि मुद्दे के साथ न्याय किया जा सके।

हालाँकि इस तरह का वर्गीकरण स्कूली विषयों के निर्माण और स्कूल में बच्चों के लिए सीखने के अनुभवों को संगठित करने के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायता करता है। शायद यह अनुभवों से अर्थ निकालने के सभी तरीकों को पर्याप्त महत्त्व देने के अवसर बढ़ा देगा। समझ के इन रूपों को विश्वविद्यालयी विषयों के साथ नहीं मिलाना चाहिए। हालाँकि सभी विषयानुशासन एक या एक से अधिक इन समझ के रूपों के ही तरीकों का इस्तेमाल करते हैं।

बच्चे का मानसिक विकास

विषयवस्तु का चुनाव एवं संगठन बहुत ही सूक्ष्मता से बच्चे के मानसिक विकास के स्तर एवं मान्य शिक्षाशास्त्र से जुड़ा हुआ है। बच्चे की रुचि की संभावनाएँ एवं उसके द्वारा सँभाला जा सकने वाला सामान्य और अमूर्तता का स्तर, ये सब महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं। ज्ञान के सृजन और पुन: सृजन को ज़रूरत है अनुभवी आधार की, भाषायी क्षमताओं की, दूसरे मनुष्यों से संबंधों की और प्राकृतिक संसार से अंत:क्रिया की। बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश लेता है तब इस सारे ज्ञान का आधार बहुत ही विकसित होता है लेकिन पूरी तरह से अत:प्रज्ञात्मक स्तर पर। विद्यालय में पहले स्तर पर इस आधार को बहुत ही सचेत और सम्मिलित तरीके से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। यहाँ विषयों में विभाजन बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है सिवाय भाषा एवं गणित की गतिविधियों के संगठन में (उस विभाजन में भी बच्चे को चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है; इतना ही काफी है कि शिक्षिका इसकी योजना गंभीरता से बनाए)। बाकी सारे विद्यालयी अनुभव सांकेतिक हो सकते हैं अगर वे समेकित प्राकृतिक एवं सामाजिक संदर्भ में अच्छी तरह से किए जाएँ। सौंदर्य की सराहना, समझना, इन सबको आसानी से इस अंत:क्रिया का भाग बनाया जा सकता है।

इस सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि पाठ्यचर्या एवं शिक्षक ज्ञान के रूपों के विकास को लेकर जागरूक हों और विद्यार्थियों के अनुभव प्रत्येक क्षेत्र के लिए आधार के रूप में व्यवस्थित किए जाएँ। विद्यार्थी को न तो यह जानने की ज़रूरत है और न ही उससे जानने की उम्मीद की जा सकती है कि अनुभवों का चयन ज्ञान के उन रूपों के आधार पर किया गया है जो दिमाग में हैं।

प्राथमिक स्तर पर हो सकता है विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के बीच स्पष्ट विभाजन के लिए पर्याप्त प्रत्ययात्मक आधार न हो लेकिन यह संभव है कि प्राकृतिक एवं सामाजिक संसार को देखने के तरीकों का परिचय गतिविधियों के रूप में दिया जाए जिनमें आँकड़ों का संकलन और उनका अर्थ निकालना शामिल हो।

उच्च प्राथमिक स्तर पर स्पष्ट रूप से परिभाषित विषय क्षेत्रों की उत्पत्ति शायद अच्छी तरह हो सकती है जिसमें उपरोक्त ज्ञान के रूपों को ध्यान में रखा जा सकता है। यहाँ पर भी नैतिक समझ एवं दर्शन (सामान्य अर्थ में विषय क्षेत्रों के बीच मुख्य चलनों को पहचानना, अवधारणाओं की समझ में परिशुद्धता, दावों को स्वीकृत करने और नकारने के लिए तर्क) पूरी पाठ्यचर्या में समेकित हो बजाय पृथक् विषय बनने के। संवाद द्वारा सामाजिक मुद्दों एवं ज्ञान की खोजबीन की मदद से इस स्तर पर विवेकपूर्ण सोच की शुरुआत की जा सकती है।

जब तक बच्चा माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर पहुँचता है तब तक पर्याप्त ज्ञान आधार, भाषा क्षमताएँ, अनुभव और ज्ञान के विभिन्न रूपों के साथ अंत:क्रिया की परिपक्वता सारे अर्थों में ग्रहण कर चुका होता है जैसे- संरचना, ज्ञान के रूप की संरचना, खोजबीन के तरीके और प्रामाणिकता की प्रक्रियाएँ। इसलिए विषय ऊपर दिए हुए मूल रूपों से और उन विषयानुशासनों से जो उच्च शिक्षा में वर्तमान स्थिति में हैं, नज़दीकी रूप से जोड़े जा सकते हैं-

जब विषय बहुत स्पष्ट रूप से परिभाषित हो तो ज्ञान के सारे आकारों का पर्याप्त सम्मिश्रण एवं समानताओं पर जोर का मुद्दा, विशेष लक्षण एवं व्यापक रूप से संभव अंत:संयोजन बहुत जरूरी हो जाता है।

बच्चे का संदर्भ

बच्चे की भाषा क्षमताएँ, ज्ञान एवं कौशल आधार, उसके मूल्य एवं अभिवृत्तियाँ सब उसके प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश में रहने की प्रक्रिया के दौरान विकसित होते हैं। नए विचार या सोचने के तरीके से अंत:क्रिया की संभावना बच्चे के मौजूद अनुभवों एवं ज्ञान का उपयोग करते हुए होनी चाहिए। पाठ्यचर्या के सामान्य उद्देश्य एवं पाठ्यचर्या के तहत विभिन्न विषयों के उद्देश्य निश्चित रूप से लक्ष्य प्राप्ति के लिए चयनित प्रत्ययों, सिद्धांतों एवं जानकारी के चयन में एवं लचीलेपन को स्वीकार करेंगे। यह चयन अपने आप में उन उदाहरणों एवं अनुभवों पर निर्भर करेंगे जो विद्यार्थी को मुहैया करवाए जा सकते हैं इसीलिए विषयों के तहत कौन-से मुद्दे चुने जाएँ और उनको कैसे पढ़ाया जाए यह बहुत ज़्यादा संदर्भ पर निर्भर करता है।

उपरोक्त चर्चा पर आधारित एक सुझावी जाँच सूची विषयवस्तु के चुनाव और संगठन पर नीचे प्रस्तुत है:

- उद्देश्यों से सहमति एवं लक्ष्यों का निर्देशन
- अधिगम की राष्ट्रीय अपेक्षाओं से सहमति
- विषय की प्रकृति को समझने में ज्ञान मीमांसीय प्राथमिकता
- प्रत्ययात्मक संबद्धता - प्राथमिकता, क्रम
- जाँच पड़ताल की कार्यप्रणाली एवं प्रामाणिकता की प्रक्रियाएँ - विषय क्षेत्र का पाठन एवं संगठन
- जीवन से संबंधों और विषयों के बीच अंतर्संबंध
- मनोवैज्ञानिक उपयुक्तता
- आगे के अधिगम में उपयोगी - व्यापक संबंध
- स्थानीय जीवन एवं बाकी संसार से जुड़ाव
- कल्पना के विकास में संभव योगदान

कसौटियाँ राष्ट्रीय स्तर पर परिभाषित हों, संरचना - राज्य/जिला स्तर पर और व्यक्तिगत वस्तु का चयन जिला/विद्यालय कक्षा के स्तर पर।

4.2.4 *शिक्षण-अधिगम के तरीके एवं कक्षायी पद्धतियाँ*

कक्षा या कोई भी जगह जहाँ विद्यार्थी पाठ्यचर्या के अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक अनुभव लेते हैं, वहाँ शैक्षिक गतिविधि वह स्थान है जहाँ किसी भी शैक्षिक गतिविधि का मूल भाग संपन्न होता है। शिक्षाशास्त्र का विकल्प चयन अनिवार्यत: उन सभी पहलुओं से जुड़ा हुआ है जिनकी यहाँ चर्चा की गई है - शिक्षा के लक्ष्य, पाठ्यचर्या के उद्देश्य, पढ़ाई की योजना, शिक्षा का सूत्र, ज्ञान का क्षेत्र एवं विषयवस्तु। इसके अलावा, इसको सिद्धांत एवं अनुभवी विचाराधारित अधिगम की मान्यताओं और विद्यार्थी के सामाजिक, आर्थिक और आयु-विशिष्ट परिवेश से जोड़ने की ज़रूरत है। पाठ्यपुस्तक एवं अन्य सामग्री का चयन अनिवार्य रूप से पढ़ाने के तरीकों एवं कक्षागत प्रक्रियाओं के चयन से जुड़ा हुआ है। आधारभूत सिद्धांत जो कक्षायी पद्धतियों के चयन में निर्देश दे सकते हैं वह नीचे दिए गए है।

यह समझना कि बच्चे खुद अपने ज्ञान का सृजन करते हैं

प्रत्येक व्यक्ति की जिसमें बच्चे भी शामिल हैं, सृजन क्षमता होती है और वह अपने ज्ञान का सृजन स्वयं करता है। विद्यालय एवं अध्यापिका की यह ज़िम्मेदारी है कि वह उपयुक्त तरीकों एवं प्रक्रियाओं के द्वारा इस सृजन की क्षमता और अधिक विकसित करे। ज्ञान उत्पन्न करने के और प्रमाणित करने के कई तरीके हो सकते हैं। एक बार बच्चों को ज्ञान के सृजन और वैधीकरण की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुज़ारा जाए तो वे न केवल उस स्थिति में विषयवस्तु की समझ का विकास कर लेते हैं। बल्कि अन्य परिस्थितियों एवं स्थितियों में अपनी समझ विकसित करने की क्षमता का भी विकास करते हैं।

अधिगम में अनुभवों का महत्त्व

किसी संकल्पना को समझने या ज्ञान सृजन में अनुभव का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। आविष्कार की प्रक्रिया में अनुभव शायद सबसे महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है जिसके द्वारा व्यक्ति को अनुभव एवं चिंतन करवाया जा सकता है और विचारों तक पहुँचाया जा सकता है। शिक्षाशास्त्र के चयन में भी बच्चों के अनुभवीय आधार की समझ बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनके पहले से हुए अनुभवों से जोड़ने से

चिंतन की प्रक्रिया में मदद मिलती है। अनुभव देना और उनके अनुभवों का सार निकालने के उपयुक्त तरीकों की खोज शिक्षकों के लिए एक चुनौती है। बच्चों के लिए सतत अनुभवों का संगठन कई तरीकों से हो सकता है। यह किसी प्रक्रिया के अवलोकन से (उदाहरण के लिए पौधे के अंकुरण को वास्तविक परिस्थितियों से देखना या दूध एकत्र करने की प्रक्रिया को विभिन्न अवस्थाओं में अवलोकित करना और डेयरी फार्म पर कई तरह के उत्पादों का बनते और पैक होते देखना); किसी ऐसे अभ्यास में भाग लेना जिसमें शरीर और दिमाग दोनों शामिल हों (किसी थीम को केंद्र बनाकर उस पर भूमिका निर्वाह करना और उसे प्रस्तुत करना); या बच्चे के स्वयं के अनुभव पर चिंतन की एक मानसिक प्रक्रिया से गुज़रना (उदाहरण के लिए, परिवार और समाज, जेंडर-भेदभाव वाले व्यवहारों पर संवाद, या अंकों के मानसिक खेल में भाग लेना।)। जीवंत अनुभव, चाहे वे उन अभ्यासों के रूप में हों जो मदद करते हैं स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ने में या विद्यालय में रचित अनुभवों के रूप में, शिक्षा के सभी स्तरों पर बहुत महत्त्व रखते हैं; केवल अनुभवों की प्रकृति, प्रकार और जटिलता जो कि स्कूल बच्चों के लिए नियोजित करना चाहता है, समय के साथ बदलने की आवश्यकता है।

ज्ञान के सृजन के लिए बच्चों का सक्रिय जुड़ाव महत्त्वपूर्ण है

अपने ज्ञान का सृजन करने के लिए बच्चों का सक्रिय जुड़ाव होना चाहिए। सक्रिय जुड़ाव का अर्थ शरीर एवं दिमाग का गतिविधियों के साथ जुड़ाव है। कई सारी शारीरिक गतिविधियों में दिमाग की संबद्धता भी शामिल होती है लेकिन कुछ शारीरिक गतिविधियाँ अगर दिमागी अनुप्रयोग की माँग नहीं करती हैं तो वे बहुत असंबद्ध और यांत्रिक हो सकती हैं। जैसे खाली बैठना और कुछ न करना, अपनी कॉपी या श्यामपट्ट से नकल उतारना या रट्टा लगाने की प्रक्रिया। बार-बार नकल या रट्टा मारने के कार्य किसी भी प्रत्ययात्मक समझ या विश्लेषणात्मक क्षमताओं का विकास नहीं करते हैं। खेल-खेलना, मानसिक एवं शारीरिक संबद्धता का एक अच्छा उदाहरण है जिसमें चिंतन, प्रक्रिया, सहयोग एवं प्रत्याशा की ज़रूरत होती है।

विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से शामिल तभी किया जा सकता है जब वे अधिगम के लिए खुद प्रोत्साहित हों। ऐसे कार्य का चयन होना चाहिए जो सीखने वाले को भागीदारी एवं अन्य प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करे। सक्रिय संबद्धता में प्रश्न करना, विवाद, खोज एवं जाचँ-पड़ताल शामिल हैं जिससे सिद्धांत बनते हैं और विचार उत्पन्न होते हैं। इसका यह आशय है कि प्रश्न करने, जाँच-पड़ताल, विवाद, चिंतन एवं प्रत्यय और विचार पैदा करने के मौके देना बहुत महत्त्वपूर्ण है। सक्रिय संबद्धता के लिए विभिन्न प्रत्ययों को सीखने एवं कौशलों के लिए चुनौती का तत्व बहुत ही गंभीर है। जो एक आयु-वर्ग के लिए चुनौतीपूर्ण हो वह दूसरे आयु-वर्ग के लिए आसान और नीरस हो जाता है। इसीलिए चुनौती को बच्चों की क्षमताओं के संदर्भ में समझने की ज़रूरत है। अनुभव प्राप्त करने से हर आयु वर्ग के बच्चों को अमूर्त संकल्पनाओं तक पहुँचने में मदद मिलती है लेकिन अनुभवों की प्रकृति और अमूर्तता का स्तर बदलता रहता है। अनुभव व्यवस्थापन में भाषा एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया है और विद्यालय के प्राथमिक वर्षों में भाषा विकास का स्तर महत्त्वपूर्ण होगा।

विद्यार्थी की उम्र

विद्यार्थी की उम्र एवं संज्ञानात्मक स्तर वे महत्त्वपूर्ण पहलू हैं जो तरीकों एवं प्रक्रियाओं के चयन को प्रभावित करते हैं। एक ही मुद्दे को भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा कई स्तर पर पढ़ाया जा सकता है बस अनुभव और जटिलता का स्तर भिन्न होगा।

प्रत्येक बच्चे की विशिष्टता

प्रत्येक व्यक्ति अनोखा है और इसीलिए वह जिस प्रक्रिया से अपने ज्ञान को सृजित करता है वह भी किसी हद तक अनोखी है। हो सकता है एक विशिष्ट तरह की प्रक्रिया कुछ बच्चों को चुनौतीपूर्ण लगे लेकिन कई बच्चे उसमें इतना मजा न ले पाएँ और संबद्धता का स्तर भी भिन्न हो सकता है, हालाँकि हरेक गतिविधि में बच्चे की पसंद को

संबोधित करना मुश्किल है लेकिन इससे उसमें विचारों के प्रतिरूप एवं प्रतिक्रिया प्रक्रिया की एक व्यापक समझ बनेगी। अगर एक अध्यापिका बच्चों को नियोजन में शामिल करती है और खुद सोच में लचीलापन रखती है तो बच्चों की अनोखी क्षमताएँ कक्षायी प्रक्रियाओं में विस्मयकारी समृद्धता लाएँगी।

बच्चे की विशिष्टता को कुछ और ज़रूरतों के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, जिन बच्चों को सुनने या बोलने में हल्की-फुल्की तकलीफ़ होती है उन्हें अध्यापिका के विशेष ध्यान और उसकी विशेष योजना की ज़रूरत होगी। विशिष्टता व्यक्तित्व के संदर्भ में भी हो सकती है। यह समझ लेने से बहुत मदद मिलती है कि वैयक्तिक ज़रूरतों में भिन्नता हो सकती है और अधिगम के लिए इसके प्रति संवेदनशीलता बहुत ही ज़रूरी है। इसका यह भी आशय है कि अध्यापिकाओं को एक ही कक्षा में भिन्न ज़रूरतों को संबोधित करने की आवश्यकता है और उन्हें उसके लिए तैयार रहना चाहिए।

विविध अनुभवों को रचने के लिए विभिन्न परिस्थितियाँ तथा बहुत तरह के तरीकों की ज़रूरत

भिन्न परिस्थितियाँ बच्चों को भिन्न अधिगम के अनुभव प्रदान करती हैं। अधिगम की विभिन्न परिस्थितियों का अगर बच्चा अनुभव करे जैसे, समूह-कार्य, स्वयं कार्य, एवं संपूर्ण कक्षा का कार्य तो उसके अनुभव का आधार व्यापक होता है। यह भिन्न परिप्रेक्ष्यों के विकास में भी मदद करता है। दूसरे शब्दों में, इसीलिए स्वयं अधिगम, सह अधिगम एवं अध्यापिका के साथ अंत:क्रिया से अधिगम के मौके देना बहुत ज़रूरी है। विभिन्न परिस्थितियों में काम करने के अनुभव से पारस्परिक निर्भरता एवं सहयोग की अनिवार्यता को समझने के लिए कौशलों के विकास में भी मदद मिलती है। स्वयं अधिगम का अनुभव स्वतंत्र रूप में कार्य करने की क्षमता के विकास के लिए मदद कर सकता है।

इसी तरह जाँच पड़ताल एवं खोजबीन के कई तरीके हो सकते हैं। अगर कक्षा में प्रश्न पूछना और वार्तालाप किसी एक चीज़ के लिए उपयुक्त है तो अवलोकन के द्वारा जानकारी और उसका विश्लेषण और सिद्धांत बनाना किसी और चीज़ के लिए ज़्यादा उपयुक्त होगा। कई मामलों में हाथ से काम करने को तवज्जह देना भी उपयुक्त होगा। इसीलिए अध्यापिकाओं के लिए यह ज़रूरी है कि वह मौखिक या गैर-मौखिक अभिव्यक्ति एवं विचारों के भिन्न रूपों से परिचित रहें और इसीलिए अध्यापिकाओं को ऐसे मौके उत्पन्न करने की ज़रूरत है जिससे इनका होना संभव हो पाए।

यह निश्चित विषय आधारित गतिविधियों को शामिल करने में मदद कर सकता है ताकि इस प्रकार के अवसर दिए जा सकें जिसमें विविध कौशलों और सूचना का अनुप्रयोग हो सके, ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जो टॉपिक संकल्पना के विभिन्न पक्षों को समझने में मदद कर सके और संबद्धता की सराहना और समझ विकसित कर सके।

'ज्ञात से अज्ञात की ओर' का स्थापित सिद्धांत बहुत उपयोगी है। लेकिन विद्यार्थी के परिप्रेक्ष्य से इसका आशय समझने की ज़रूरत है। कई बार जो वयस्कों का परिप्रेक्ष्य होता है कि विद्यार्थी को क्या ज्ञात है वह विद्यार्थी के अपने ज्ञात के परिप्रेक्ष्य से भिन्न होता है। इस संदर्भ में यह समझना जरूरी होगा कि सीखने की प्रक्रिया एक दिशा में नहीं होती इसीलिए बढ़त भी एक दिशा में नहीं होनी चाहिए। परिचित और अपरिचित के बीच का रिश्ता, स्थानीय और सार्वभौमिक के बीच का रिश्ता बहुत जटिल और एक ताने-बाने की तरह है। इसीलिए एक सादी-सी समझ हमारा गलत मार्गदर्शन कर सकती है। 'ज्ञात की परिभाषा' स्थान, क्षेत्र, उम्र और ज़रूरत के हिसाब से बदल जाती है और इसलिए उसी हिसाब से उसका निरूपण करना चाहिए।

न केवल विषय की प्रकृति, ज्ञान का क्षेत्र एवं विद्यार्थियों की आयु बल्कि कई और वस्तुपरक परिस्थितियाँ जैसे विद्यालय का स्थान (ग्रामीण, शहरी, दूरस्थ, इत्यादि), परिवेश (जंगल के निकट, जल स्रोतों के निकट, इत्यादि) एवं पड़ोस (मिश्रित-सामाजिक समूह, अलग-थलग जाति समूह, आर्थिक एवं जीविकोपार्जन का आधार, इत्यादि) तरीकों के विशिष्ट चयन एवं संयोजन को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण विद्यालय वनस्पति एवं

जंतुओं से समीपता के कारण ज़्यादा समृद्ध हो सकते हैं जिससे परिवेश को समझने के कुछ वास्तविक जीवन के अनुभव मिल सकते हैं। विद्यार्थियों का सांसारिक नज़रिया इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस तरह की जगह में रहते हैं। और वे कहाँ आते-जाते हैं अध्यापिकाओं को इस बारे में जागरूक होने की ज़रूरत है अगर वह इसे अधिगम के लिए इस्तेमाल करना चाहती हैं। उदाहरण के लिए पानी की कमी का मुद्दा रेगिस्तान में जीने के तरीके में शामिल है और उसका महत्त्व उन इलाकों से अलग है जहाँ पानी बाहुल्यता में है।

कक्षायी पद्धतियों में समय का प्रबंधन एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। यह ध्यान में रखते हुए कि अध्यापिकाएँ ऐसे विद्यालयों में कार्य करती हैं जहाँ पीरियड एवं दर्जों की संरचना होती है और उन्हें समय के मुद्दे पर भी निर्णय लेने होते हैं। विद्यालयी व्यवस्था ज़्यादातर समय के विभाजन का सख्ती से अनुकरण करती है जिसमें 30-50 मिनट के पीरियड होते हैं। इस निर्णय का तर्क तो स्पष्ट नहीं है क्योंकि भिन्न प्रकार की गतिविधियों के समय की आवश्यकता भिन्न होती है। कुछ गतिविधियों का बिना चिंतन और अधिगम को हित पहुँचाए विभाजन हो जाता है। लेकिन कुछ गतिविधियों में एक निरंतरता होती है - उनकी प्रक्रिया लंबे समय तक चलती रहती है। चुनाव का निर्धारण करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक होने चाहिए - वांछनीय अधिगम प्रक्रिया को सुलभ बनाना और उसको अपेक्षित रूप में व्यवस्थित करने की अध्यापिका की क्षमता। बच्चों की ध्यान देने की अवधि प्रक्रिया की प्रकृति एवं प्रबंध के तरीके पर निर्भर करती है। कक्षा व्यवस्था का मुद्दा भी महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि दर्जों के हिसाब से व्यवस्था सबसे ज़्यादा प्रचलित है लेकिन कुछ गतिविधियों के लिए भिन्न आयु और स्तर के हिसाब से समूह व्यवस्थापन पर भी ध्यान दिया जाता है। विद्यार्थियों का एक सम्मिश्रण जो भिन्न अनुभवों एवं स्तरों के आधार पर हो वह सह-अधिगम में मदद कर सकता है जोकि एक सम समूह में संभव नहीं है।

कक्षागत व्यवहारों के लक्ष्यों के निहितार्थ

शिक्षा के विभिन्न लक्ष्य जिन पर हम पहले ही बात कर चुके हैं, कक्षागत पद्धतियों के विकल्प के चयन में निहित हैं। कक्षागत अधिगम एवं अनुभवों का ऐसा व्यवस्थापन होना चाहिए जिससे एक ही तरह के मूल्यों और सिद्धांतों को बढ़ावा मिले। उदाहरण के लिए, समता बढ़ाने का उद्देश्य, लोकतंत्र, आज़ादी एवं बहुवादिता को शिक्षाशास्त्र के हर पहलू में प्रतिबिंबित होना चाहिए जिसमें पढ़ाने के तरीके, शिक्षक-विद्यार्थी रिश्ता, अधिगम अनुभवों की प्रकृति एवं प्रकार शामिल हैं। विद्यार्थियों को यह अनुभव करने की ज़रूरत है कि समता क्यों आवश्यक है, लोकतंत्र क्या है, वह कैसे कार्य करता है, अपनी कक्षा में बहुवादिता को संबोधित करने का क्या आशय है। एक सरल उदाहरण लें, ऐसी कक्षा में समता एवं लोकतंत्र को बढ़ावा देने में समस्या होगी जिसमें अध्यापिका बच्चों को प्रश्न नहीं पूछने देती, जिसमें अध्यापिका शांत बच्चे को भागीदारी एवं ऊपर आने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती है और जिसमें विभिन्न विचारों को चर्चा एवं विवाद के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में, लोकतंत्र और समता को सिर्फ़ ज्ञान के क्षेत्रों की तरह पढ़कर नहीं समझाया जा सकता बल्कि इसे नियमित कक्षागत पद्धतियों का एक अंग बनाना होगा। समाज में मौजूद कई रूढ़ियों को विशिष्ट गतिविधियों के द्वारा हिलाया जा सकता है। यही सिद्धांत अन्य क्षेत्रों पर भी लागू होगा। उदाहरण के लिए, लड़कियों को फुटबाल खेलने के लिए या साइकिल चलाने के लिए प्रोत्साहित करना। खासकर उन हिस्सों में जहाँ यह आम बात नहीं है। बच्चों के भविष्य की तैयारी के लिए सचेत प्रयास भी बहुत मूल्यवान होंगे।

विद्यार्थियों की अस्मिता एवं सामाजिक-आर्थिक परिवेश

विद्यार्थी के सामाजिक-आर्थिक परिवेश का कक्षागत पद्धतियों के लिए बहुत महत्त्व है। उदाहरण के लिए, बच्चे की आर्थिक पृष्ठभूमि का उसके स्वास्थ्य, पोषण-स्तर एवं शारीरिक बनावट पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। यह बच्चे की ध्यान देने की क्षमता को प्रभावित कर सकता है, उसका ऊर्जा स्तर, उसकी शारीरिक बनावट पर आधारित छवि

और इन सबका बच्चे की संबद्धता और कक्षा से जुड़ाव पर असर होगा। अध्यापिका को उसे कक्षा में स्वीकृति महसूस कराने की ज़रूरत है जो अधिगम के लिए सबसे पहली माँग है। ठीक इसी तरह धर्म या जाति अधिकतर लोगों की अस्मिता का हिस्सा होती है जिसमें बच्चे भी शामिल हैं। बच्चे का जेंडर भी उसकी अस्मिता का भाग होता है। सामाजिक एवं लैंगिक रिश्तों में सत्तामयी लक्ष्यार्थ होते हैं और इसीलिए विद्यार्थी की स्वयं-छवि, स्वयं से आकांक्षाएँ, सहपाठियों एवं अध्यापिका से रिश्ते में इनके निहितार्थ होंगे। अध्यापिका को इन कारकों और उनसे पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जागरूक होने की ज़रूरत है। अध्यापिका को चाहिए कि वह ऐसी कक्षा सुलभ करवाए जहाँ प्रत्येक बच्चा स्वयं को जुड़ा हुआ समझे एवं सीखने में रुचि महसूस करे।

ज़रूरत है इन मुद्दों और प्रक्रियाओं को समझने की और विभिन्न प्रकार की ज़रूरतों की तरफ़ संवेदनशीलता की। उदाहरण के लिए, अगर लड़कियाँ आगे आकर खुद पहल नहीं करती हैं तो अध्यापिका के लिए यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ऐसे मौके पैदा कर पाए। इसी तरह अगर एक दलित बच्चा ऊँची जाति के बच्चों के साथ कक्षा में पृथक् महसूस करे तो अध्यापिका को उस पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। कई परिस्थितियों में लिंग, जाति या अस्मिता के अन्य पहलुओं के मुद्दों पर संवेदनशीलता के साथ सीधे चर्चा की जा सकती है जिससे चिंतन एवं अंतर्निरीक्षण की प्रक्रिया शुरू हो सके।

यह ध्यान में रखते हुए कि अब विद्यालयों में बड़ी संख्या में विद्यार्थी हैं जो अपने परिवार में पढ़ने वाली पहली पीढ़ी के हैं और इसीलिए ऐसी पृष्ठभूमि से आते हैं जिसमें औपचारिक शिक्षा का रिवाज़ पहले से मौजूद नहीं है - शिक्षाशास्त्र के लिए इसके निहितार्थ को समझने की बहुत ज़रूरत है। शिक्षकों को यह समझने की ज़रूरत है कि ये बच्चे ज़्यादा संवेदनशील और असुरक्षित हैं इसीलिए ये अनियमित या कम ध्यान देने वाले हो सकते हैं। और ऐसे कई कारण हो सकते हैं जैसे, अपने माता-पिता के काम में हाथ बँटाना, अपनी या दूसरों की बार-बार होने वाली बीमारी इत्यादि। शिक्षा के प्राथमिक वर्षों में मातृभाषा शिक्षण की माध्यम भाषा से भिन्न हो सकती है और सीखने-सिखाने पर इसका भी प्रभाव पड़ता है।

विभिन्न सांस्कृतिक व्यवहारों को भी एक संसाधन की तरह देखना चाहिए। इसकी समझ न केवल शिक्षकों को यह समझा सकती है कि विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य को कैसे समझें बल्कि विभिन्न परिप्रेक्ष्य बनाने और बहुवादिता का सम्मान बढ़ाने में भी मदद कर सकती है।

समर्थ और सशक्त करने वाला शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध

स्कूली और सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक-शिक्षार्थी के रिश्ते की गंभीरता पर रोशनी डालना ज़रूरी है। अधिगम की प्रक्रिया यह माँग करती है कि अध्यापिका द्वारा निर्देशित प्रक्रिया में बच्चे नि:संकोच रूप से भागीदार बनें। बच्चों की सीखने को लेकर उत्सुकता में शिक्षकों की उम्मीदें बहुत प्रभावशाली होती हैं और बच्चों की सीखने की गति और स्तर को भी प्रभावित करती हैं। विद्यार्थी के 'कमज़ोर' या 'तेज़' होने की संकल्पना का उत्साह से सीधा संबंध है। यह उसके रुचि के स्तर को भी प्रभावित करते हैं। इस धारणा के जाति एवं लिंग के लक्ष्यार्थ भी हैं। अध्यापिका को यह समझने की ज़रूरत है कि प्रत्येक व्यक्ति में सीखने की क्षमता होती है और वह कैसे उस क्षमता को यथार्थ में अनुवादित करती है। इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षक, विद्यार्थियों के साथ बराबरी का रिश्ता बनाए चाहे वह किसी पृष्ठभूमि से या विशिष्टता के साथ आते हों।

अभिभावकों एवं समाज की भूमिका एवं स्थान

जहाँ विद्यालय, निर्देशित अधिगम के लिए एक संरचित जगह है, वहीं ज्ञान-सृजन एक निरंतर प्रक्रिया होती है जो विद्यालय से बाहर भी चलती रहती है। कक्षायी पद्धतियों में समुदाय को पाठ्यचर्या की योजना में कुछ स्थान देना, अधिक सहयोग और पारस्परिक लगाव को बढ़ाने में मदद कर सकता है। अभिभावकों या समुदाय के लोगों को एक संसाधन की तरह देखना चाहिए जिनसे कुछ विचार, प्रत्यय सीखे जा सकते हों और जिनके अनुभव बाँटे जा सकें।

उदाहरण के लिए, कुम्हार अपने कौशल, औजार, और अपने काम के महत्त्वपूर्ण पहलू बाँट सकता है जबकि बैंक कर्मचारी बैंक की कार्यप्रणाली समझा सकता है और एक विशिष्ट संदर्भ में इस व्यवस्था की अनिवार्यता। चुनाव विशिष्ट पाठ्यचर्या की योजना और मौजूद विशेषज्ञों पर निर्भर होंगे। ज़रूरत है अभिभावकों की सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी की। यह रिश्ता शिक्षाशास्त्र और विषयवस्तु को बाँटने और उससे निरंतरता बनाए रखने में मदद करेगा।

विकल्प चुनने के तरीके और व्यवहार शिक्षक-विद्यार्थी के अनुपात पर निर्भर करते हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों द्वारा यह पता चलता है कि 1:30 से अधिक अनुपात विद्यालय के किसी भी स्तर पर अपेक्षित नहीं है। 1968 में कोठारी आयोग की रपट में भी यही अनुपात अपनाने के सुझाव दिए गए हैं। सक्षम वातावरण बनाने और नयी सोच उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त और उपयुक्त शिक्षक प्रशिक्षण के साथ-साथ निरंतर सहयोग और सुगम बनाने की प्रक्रिया भी ज़रूरी है।

4.2.5 शिक्षण-अधिगम सामग्री और पाठ्यपुस्तकें

पाठ्यपुस्तक प्रभावी कक्षागत व्यवहार

आज देश के अधिकतर विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकें कक्षा में हावी हैं। शैक्षिक नियोजन के कक्षा में पहुँचते-पहुँचते पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के लचीले होने की सारी संभावनाएँ तथा शिक्षक की आज़ादी की संभावनाएँ कहीं गुम हो जाती हैं। शिक्षक को या तो अयोग्य या निरुत्साहित समझा जाता है या फिर दोनों, विद्यालय को अधिगम-सामग्री रहित समझा जाने लगता है और यह समझा जाने लगता है कि वातावरण बच्चों के अधिगम में किसी काम का नहीं। पाठ्यपुस्तकें इन सारी कठिनाइयों का एकमात्र हल समझी जाती हैं। वह सारा ज्ञान जो कक्षा में बच्चे से ग्रहण करने की उम्मीद की जाती है इसमें एकत्र किया जाता है एवं इस ज्ञान को नियोजित किया जाता है, ताकि बच्चे को इस ज्ञान के अतिरिक्त कहीं और देखने की ज़रूरत न पड़े। इस कारण 'पाठ्यपुस्तक को पढ़ाना' पर्याप्त शिक्षा माना जाता है।

इस ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व के कारण पाठ्यपुस्तक ने एक गौरवशाली और मानक रूपरेखा को अपना लिया है। इसको शुरू से अंत तक एक निश्चित क्रम में खत्म करने की आवश्यकता है। पाठ्यपुस्तक की अपनी एक भाषा है जो कठिन होने के साथ-साथ अवधारणाओं से भरी है। (इस कठिनाई को सुलझाने के लिए कई राज्यों के प्रयास के कारण कुछ ऐसी पुस्तकों की रचना हुई है जिनमें बहुत कम अवधारणात्मक विषयवस्तु है।) पाठ्यपुस्तक प्रभुत्व का वह प्रतीक बन गई है जिसे अवमानित करना कठिन है।

पाठ्यपुस्तक से शिक्षण-अधिगम सामग्री की ओर

इस आधार पत्र में ऐसे पाठ्यचर्या के ढाँचे के बारे में बात की गई है जो विद्यालय और शिक्षक को योग्य चुनाव करने और स्वायत्तता की ओर बढ़ने में सक्षम बनाता है। सभी पाठ्यचर्या दस्तावेज़ और नीतियों में विद्यालय के स्वायत्तता की ओर बढ़ने को सकारात्मक दृष्टि से देखा गया है। साथ में यह भी माना गया है कि विद्यालय और शिक्षक के स्तर पर चुनाव तभी संभव हो सकता है जब वह आधारभूत सिद्धांतों से स्वीकृत ढाँचे के अंतर्गत हो। हमने इन सिद्धांतों की चर्चा जिन संदर्भों में की है वे हैं - सामान्य उद्देश्य (राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत), विशिष्ट उद्देश्य (स्कूली शिक्षा की अंतिम अवस्था के लिए राष्ट्रीय मानकों के साथ समझौते को ध्यान में रखते हुए राज्य और ज़िला स्तर पर स्वीकृत) और विषयवस्तु का चुनाव (शायद राज्य स्तर के पाठ्यक्रम के निर्देश में जिला और स्कूल स्तर पर)। जब हम पढ़ाने के तरीकों, सीखने की गति, सामग्री एवं मूर्त उदाहरण के निर्णय पर पहुँचें तब हम विद्यालय और कक्षा के स्तर तक पहुँचते हैं। यह मूर्त निर्णय हैं जो विशिष्ट कक्षा तथा बच्चों के लिए ही किए जा सकते हैं क्योंकि यथार्थ अधिगम केवल बच्चे के मस्तिष्क में होता है एवं उसके पूर्व ज्ञान पर निर्भर करता है। इस कारण विषयवस्तु, तरीकों एवं सामग्री की पुनःव्याख्या करना शिक्षक के व्यावहारिक निर्णयों के क्षेत्र के अंतर्गत है।

इस तर्क की दृष्टि से आज सीखने-सिखाने की सामग्री के पैकेज की आवश्यकता है न कि एक पाठ्यपुस्तक

की जिसके द्वारा बच्चों को सक्रिय रूप से सीखने दिया जाए। प्राथमिक स्तर पर मूर्त वस्तुएँ शामिल की जा सकती हैं जिनके द्वारा अवधारणाएँ बनने में मदद मिलती है (जैसे कि आकार, गिनने वाली वस्तुएँ इत्यादि), अवलोकन के उपकरण, समझाने तथा खेलने के लिए चार्ट्स और कार्ड्स, इत्यादि। शिक्षा के अगले स्तर पर प्रासंगिक मुद्दों पर विविध किताबें। पाठ्यपुस्तक इस पैकेज का एक उपकरण है जो बच्चों को सीखने से जोड़ती है। शिक्षिका कक्षा में विविध गतिविधियों, मूर्त सामग्री और पाठ्यपुस्तक को प्रयोग में ला सकती है।

उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के अनुसार यह सुनियोजित किया जाता है कि क्या सीखना है एवं क्या मूल्यांकित करना है। यह स्तर विशिष्ट उद्देश्यों से नियोजित करना चाहिए। बहुत सारी सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के विद्यालयों में एक सफल पहल के अंतर्गत सीखने-सिखाने की सामग्री के पैकेज प्रयोग में लाए गए। नल्ली-कली (कर्नाटक), दिल्ली में मीरांबिका, राजस्थान में दिगंतर और बोध एवं उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले में केयर इंडिया के सहयोग से चलाए जा रहे कुछ विद्यालय ऐसे विद्यालयों के उदाहरण हैं।

इस पैकेज का भाग होने के लिए पाठ्यपुस्तक को बदलने की ज़रूरत है। ज़रूरी नहीं कि पाठ्यपुस्तक सारे साल पढ़ाई जाए इसलिए यह भी ज़रूरी नहीं कि उसमें सारा पाठ्यक्रम हो। कोई भी अच्छी पाठ्यपुस्तक बच्चे के वातावरण की अन्य लोगों एवं सहपाठियों के साथ अंतर्क्रिया करवाने वाली होनी चाहिए। वह एक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करे जिससे बच्चा सक्रिय रूप से पाठ, विचारों, वस्तुओं, वातावरण और लोगों से अपने को जोड़ते हुए, अपनी समझ का निर्माण कर सके। यह ऐसी न हो जो ज्ञान को अंतिम उत्पाद के रूप में बच्चों के दिमाग में भरने का काम करे।

संदर्भ एवं शिक्षण-अधिगम सामग्री

शिक्षण-अधिगम सामग्री का पैकेज सिर्फ़ बच्चे के संदर्भ को दिमाग में रखकर नहीं बनाया जा सकता। कोई एक पैकेज भारत की सारी परिवेशीय परिस्थितियों को संबोधित नहीं कर सकता। इस कारण अधिक से अधिक पैकेज निर्मित करने की आवश्यकता है। साथ ही राज्य और ज़िले के स्तर पर बदलाव लाने का अवसर भी प्रदान किया जाना चाहिए।

शैक्षिक प्रक्रिया को संदर्भित बनाने के साथ-साथ शिक्षण-अधिगम सामग्री के पैकेज का निर्माण यदि स्थानीय स्तर पर किया जाए तो इसमें शिक्षकों की भागीदारी बढ़ जाएगी। इससे शैक्षिक वार्तालाप की गुणवत्ता बढ़ जाती है तथा शिक्षक सामग्री और तरीकों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी बेहतर रूप से समझने लगता है।

शिक्षण-अधिगम सामग्री की बहुलता

यह ज़रूरी नहीं कि हर ज़िले में शिक्षण-अधिगम सामग्री का एक ही पैकेज हो। शिक्षण-अधिगम सामग्री के पैकेज के विकल्प होने से शिक्षक के चुनाव के लिए विकल्प बढ़ जाते हैं। ऐसे पैकेज निजी प्रकाशकों द्वारा निर्मित और प्रकाशित किए जा सकते हैं। प्रत्येक विद्यालय एवं शिक्षक अपनी पसंद का पैकेज चुन पाएगा यदि वह अधिगम के अपेक्षित स्तरों की तरफ़ प्रतिबद्ध है और प्रत्येक पुलिंदा साबित गुणों वाला हो। तरीकों एवं सामग्री को चुनने की आज़ादी अध्यापिका की ज़िम्मेदारी एवं स्वयं-छवि को बढ़ाती है।

शिक्षण-अधिगम सामग्री (जिनमें पाठ्यपुस्तकें भी सम्मिलित हैं) के विकास की प्रक्रिया

राज्य द्वारा चलाई जा रही संस्थाएँ अकेले ही शिक्षण-अधिगम सामग्री के पैकेज विकसित नहीं कर सकतीं। इसमें निजी प्रकाशकों को शामिल करना अपरिहार्य है। यदि बड़ी मात्रा में शिक्षण-अधिगम सामग्री उपलब्ध करानी है, निजी एवं राज्य दोनों तरह की संस्थाओं को शामिल करते हुए, तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षण-अधिगम सामग्री की गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए इस सामग्री के विकास के कुछ मानक निर्धारित किए जाएँ। जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान जैसी संस्थाएँ मानक स्थापित करने की दिशा में आगे आएँ। उदाहरण के लिए, शासन द्वारा यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि खुले बाज़ार अथवा बहुत

अधिक संख्या में विद्यालयों में शिक्षण-अधिगम सामग्री को बेचने से पहले उसे कुछ निर्धारित समय तक कुछ निर्धारित स्कूलों में प्रयोग कर देखा जाए। इसी प्रकार की दूसरी शर्त शिक्षण-अधिगम सामग्री के विकास की प्रक्रिया में विद्यालयी शिक्षकों की भागीदारी है। जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान तथा अन्य शासकीय संस्थाएँ शिक्षण-अधिगम सामग्री के मानक स्थापित करने में मुख्य भूमिका निभा सकती हैं।

4.2.6 मूल्यांकन

विद्यालय में विद्यार्थी का आकलन और मूल्यांकन

मूल्यांकन, इसका हर एक टुकड़ा - शोध, कार्यान्वयन, मूल्यांकनकर्ताओं का प्रशिक्षण, मूल्यांकन विवरणिका (नियम पुस्तिका) और कार्यशालाएँ, विशाल इमारतों में मूल्यांकन की नयी पद्धतियाँ जो कि वर्तमान से भी खराब हैं, को खोजने के प्रति समर्पित लोग - दूसरे शब्दों में, संपूर्ण पुरातन मूल्यांकन प्रक्रिया को जितना जल्दी संभव हो, उतनी जल्दी लपेट कर, बंडल बनाकर, ताला लगाकर, हमारी शिक्षा व्यवस्था की खिड़की से बाहर उसी तरह फेंक देना चाहिए, जिस तरह 18वीं शताब्दी में, लंदन में सदन बरतनों (chamber pots) को खाली किया गया था, समय एवं विषयवस्तु समान है... पिछले तीन सालों में विद्यालयी शिक्षा का धीरे-धीरे पतन करने वाली प्रमुख शक्तियों में से मूल्यांकन भी एक है: मूल्यांकन ने अंकन में ज़्यादा से ज़्यादा निष्पक्षता के प्रति अपने पागलपन के कारण तथा बच्चों के कोमल दिमाग को अनगिनत जानकारी के बेकार टुकड़ों (स्वेज नहर किसने बनाई? 19 नवम्बर को सूर्य कहाँ होगा? हेयर कौन है और उसके उपकरणों के बारे में तुम क्या जानते हो?) से भरने की अपनी अंतहीन इच्छा के चलते शिक्षा को ऐसे भीमकाय तथा अत्यंत उत्साही प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम में सीमित कर दिया है, जहाँ जीतने वाले को स्वर्ग का स्वतंत्र टिकट, आई.ए.एस. के रूप में, तथा द्वितीय स्थान पर आने वाले को शुद्धिकरण का टिकट, आई.आई.टी. तथा उच्च प्रबंधक पदों के रूप में, प्रश्नोत्तरी में कोई स्थान प्राप्त न कर पाने वाले अन्यों को केवल चल सकने की स्वतंत्रता वो भी न तो स्वर्ग में और न ही शुद्धिकरण स्थल में मिलती है।

-डेविड होर्सबर्ग

उपरोक्त टिप्पणी वर्तमान मूल्यांकन व्यवस्था के द्वारा उत्पन्न तबाही को सामने लाती है। विद्यार्थी को एक साफ़ स्लेट की तरह माना जाता है, लेकिन यह चर्चा का विषय है। शिक्षक विद्यार्थी को ज्ञान देकर, उसे अँधेरे से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। प्रशिक्षित शिक्षकों में से अधिकांश, विभिन्न शिक्षा समितियों के शिक्षा के प्रति विचारों से अपने शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय में, परिचय प्राप्त कर चुके होते हैं, फिर भी उन्हें शिक्षा के उद्देश्य एवं लक्ष्यों के बारे में लगातार याद दिलाना ज़रूरी होता है। अधिकतर शिक्षक, निरीक्षण अधिकारी के आगमन के भय और अपने छात्रों की परीक्षा में सही तथ्यों को दुहराने की योग्यता के असफल होने के भय में जीते हैं। निरीक्षण अधिकारी के विद्यालय भ्रमण की विवरणिका खुलासा करती है कि विद्यालयों में मुख्यतया दुहराने और लगातार अभ्यास को ही मुख्य शिक्षण तकनीक की तरह प्रयोग किया जाता है। तथ्यों का दुहराना दूसरे महत्त्वपूर्ण अधिगम तत्व जैसे प्रदर्शन, प्रेक्षण, विश्लेषण, बाँटना, अनुचिंतन, और अभिव्यक्तिकरण के ऊपर हावी रहता है। यशपाल समिति की रिपोर्ट में यह तथ्य है कि उपरोक्त वांछनीय नहीं है, सबके सामने रखी *शिक्षा बिना बोझ* के रिपोर्ट के अनुसार 10 तथा 12 की बोर्ड की परीक्षा के विषय आधारित तथा प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम के अनुरूप प्रचालित प्रश्नों को अवधारणा आधारित प्रश्नों से बदला जाना चाहिए। रिपोर्ट में कहा गया है कि केवल यही एक इकलौता बदलाव, अधिगम की गुणवत्ता सुधारने और बच्चों को बिना समझे याद करने की यंत्रणा से छुटकारा दिलाने के लिए काफ़ी है।

इस स्थिति में शासक वर्ग एवं योजनाकारों का दृष्टिकोण भी जुड़ जाता है, जैसा कि विश्व भारती संशोधन बिल दस्तावेज़ की सिफ़ारिशों में भी देखा जा सकता है, जो कि विश्व बैंक के द्वारा विकासशील देशों, विशेषतया कम आमदनी वाले देश जैसे कि भारत के बारे में दिए गए सुझावों पर आधारित है, ऐसा ही एक सुझाव ''औपचारिक शिक्षा के उच्च स्तर का विकास चुनिंदा एवं सावधानीपूर्वक बनाई गई योजना के तहत होगा, जिसमें श्रम के लिए आधुनिक खंड सीमित वह क्षमता, और सार्वजनिक तथा निजी दोनों खंडों की प्रबंधन और तकनीकी कौशल संबंधित ज़रूरतों को, बढ़ती हुई

व्यावहारिक आर्थिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में, प्राथमिकता दी जाएगी।''[10]

विद्यालय जाने वाले बच्चों में 'असफलता की बढ़ती दर' और 'गिरते मानकों' के कारणों पर आत्ममंथन ज़रूरी है। क्या यह पाठ्यक्रम व्यवस्था की असफलता, पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और अब तक अपनाए गए शिक्षण-अधिगम मार्ग, का अनुचिंतन नहीं है? उपरोक्त सभी चिंताओं पर विचार आगे चर्चाधीन हैं।

आकलन का उद्देश्य

मूल्यांकन एक संबंधित शब्द है। शिक्षा में यह हमेशा उद्देश्यों एवं क्रियान्वयन से जुड़ा रहा। यह स्वयं में एक प्रक्रिया है जो कार्य योजना का निर्धारण करती है तथा व्यष्टि, समाज, राष्ट्र तथा मानव जाति के हित के लिए संस्तुति करती है। अगर हम शिक्षा को सार्थकतापूर्ण जीवन की तैयारी मानें तो वर्तमान मूल्यांकन की प्रक्रिया जो दिमाग के बहुत कम ही संकायों को नापती एवं जाँचती है, यह व्यक्ति की योग्यता अथवा शैक्षिक उद्देश्यों की ओर इसकी प्रगति की सही तसवीर देने में अपर्याप्त एवं असफल है।

इसके लिए सबसे पहले मूल्यांकन की प्रक्रिया में समानता की कोई आवश्यकता नहीं है चाहे वह विश्वविद्यालय स्तर पर हो या प्राथमिक विद्यालयों में। मूल्यांकन पहले से ही शिक्षक द्वारा प्रतिपादित एवं जाँच की समस्त तकनीकों से युक्त हो। दूसरा यह कि आकलन विद्यार्थियों की केवल निष्पत्ति की गुणवत्ता देखने की प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह अधिगम के भिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के सीखने के स्तर के बारे में राय बनाने के लिए प्रमाणों को इकट्ठा करने, विश्लेषित करने और निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य निष्पत्ति में सुधार होता है न कि अधिगम के भिन्न स्तरों पर कई तरह के निर्णय लेना।

नि:संदेह आकलन का उद्देश्य शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सुधार करना तथा विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए निर्धारित उद्देश्यों का पुनरावलोकन करना है। इसके अलावा आकलन उद्देश्यों की प्राप्ति एवं विद्यार्थी की योग्यता के विकास को मापने के लिए किया जाता है न कि केवल यह जानने के लिए कि विद्यार्थी ने कितना याद किया है। विद्यार्थी की याददाश्त एवं समझ को बने-बनाए तरीके से जाँचना अप्रचलित एवं पुराना है। आधुनिक समय में जहाँ बच्चे की सृजनात्मकता, नवाचार एवं विकास पर बल दिया जा रहा है, हमें मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि के नवीन तरीकों को पुन: परिभाषित करना एवं ढूँढ़ना होगा।

अंतत: आकलन की आवश्यकता शिक्षार्थी की अंतर्विद्यालय स्थानांतरण के लिए प्रगति की सार्थक रिपोर्ट देना, कोर्स की समाप्ति पर उसे प्रमाण पत्र देना, समय-समय पर अभिभावकों, नियोक्ताओं तथा समुदाय को विद्यार्थी की प्रगति की गुणवत्ता एवं स्तर की रिपोर्ट देना है। यह प्रतिस्पर्धा बढ़ाने का साधन नहीं होना चाहिए। यदि निष्पत्ति में गुणवत्ता की दरकार है तो बच्चों के अलग-अलग स्तरों को विभाजित कर उनमें कुंठा भरना सही तरीका नहीं है।

विद्यार्थी का मूल्यांकन

एक सार्थक रिपोर्ट बनाने के लिए ज़रूरी है हर बच्चे के सीखने का मूल्यांकन करना। बच्चों के उपलब्धि स्तर के साथ-साथ बच्चे की अभिरुचि, अभिवृत्ति (सीखने की) तथा उसके स्वतंत्र रूप से सीखने की क्षमता भी शामिल है। इन सबको समझने के लिए यह ज़रूरी है कि कक्षा में मूल्यांकन की प्रक्रिया को बदला जाए जिसके अंतर्गत मूल्यांकन उन अनुभवों पर आधारित हो जो बच्चा सीखते समय अनुभव करे। सीखने की प्रक्रिया का मूल्यांकन होता है जिसमें निर्णय प्रत्येक सीखने वाले के स्वभाव और गुणवत्ता को आधार बनाकर लिए जाएँ जिसमें धीमी गति और तेज़ गति वाले अधिगमकर्ता के रूप में तुलना, विभाजन और वर्गीकरण न हो। दक्षता नहीं है, जैसे निर्णय या अंक देने जैसी क्रिया केवल एक अवलोकन पर आधारित होती है, जो अपेक्षित नहीं हैं। अवलोकन विशेषकर, स्व-अवलोकन, एक शक्तिशाली उपकरण होता है जिससे शिक्षिका दूसरों के बारे में बहुत कुछ जान सकती है। प्रतिदिन अवलोकन डायरी लिखना निरंतर मूल्यांकन में मदद करता है। एक शिक्षिका की डायरी से

10. शिक्षा क्षेत्र योजना पत्र अप्रैल 1980, पृ. 87

लिया गया, *''किरण अपने काम में मजा ले रही थी। वह बहुत जल्दी ऐसी किताबों को पढ़ने में रुचि लेने लगी जो रोचक एवं छोटी थीं। उसका कहना है कि तथ्यों को संक्षेप में नोट करना उसे अच्छा लगता है। उसका कहना है कि इससे उसे विषय को समझने में सहायता मिलती है। वह व्यावहारिक पद्धति पसंद करती है।''*

इसी प्रकार बच्चे के कार्य का रिकार्ड रखने के तरीके, उन तरीकों का व्यवस्थित संकलन जिनसे अधिगम आगे बढ़ा और सुधार जैसा लेखन में देखा जा सकता है, बनाई गई सामग्री और विचार को इन बच्चे के बारे में रिपोर्ट देने वाले कथन में शामिल किया जा सकता है, अंकों के साथ यदि ज़रूरी समझा जाए तो।

परीक्षा की प्रकृति एवं उपयोग

हमारी दृष्टि में परीक्षा का उद्देश्य सही परिभाषित और संवेदित उपलब्धि स्तरों का मूल्यांकन करना होना चाहिए न कि याददाश्त का अर्थहीन मूल्यांकन[11] करना। किसी भी सार्थक परिवर्तन की प्रक्रिया में परीक्षा के तरीकों में सुधार एक महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है। यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि परीक्षा व्यावहारिक रूप से विषयवस्तु और विधियों के क्रियान्वयन के परिणाम सामने रखती है। जब तक यह साधारण प्रत्यास्तरण और विषयवस्तु के दोहराव पर बल देती है जैसा कि पाठ्यपुस्तक में लिखा जाता है, तब तक सभी प्रकार के नवाचार बेकार हैं।

किसी विषय के लिए जो शुरुआत में दिए जा चुके उद्देश्यों पर आधारित है, परीक्षा विधि का अर्थ होना चाहिए न केवल दी गई योग्यताओं और कौशलों के मात्र निष्पति स्तर का एक मूल्यांकन, बल्कि चिंतन की प्रक्रियाओं को जानना जिसका उपयोग अधिगमकर्ता ने किया इसके साथ ही यह भी कि क्या वह यह जानता है कि सूचना कहाँ से ली जा सकती है, इसका इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है और कैसे इसे विश्लेषित/मूल्यांकित तथा उत्पन्न किया जा सकता है। इसे बेहतर ढंग से करने का तरीका है खुली पुस्तक परीक्षा, जो बच्चे की उन अधिगम दक्षताओं के अनुप्रयोग पर बल देती है जो सोच और प्रयोग से संबंधित होती हैं, जिसमें सांख्यिकीय विधियाँ शामिल होती हैं और जिन्हें शिक्षिकाओं द्वारा स्वयं ही आयोजित किया जाता है। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षक परियोजना सहित कुछ अन्य ने इस प्रकार के प्रयासों का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया। लेकिन परीक्षा नीति को बदलना आसान काम नहीं है। ऐसा इस कारण नहीं कि इसके वैकल्पिक तरीके नहीं हैं बल्कि इसलिए कि इसमें काफ़ी राजनीतिक समस्याएँ हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मध्य प्रदेश सरकार ने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षक परियोजना को परीक्षा प्रणाली में सुधार की अनुमति दी। मुंबई नगरपालिका एवं खिरोडा के विद्यालयों में परीक्षा प्रणाली में किए गए नवाचारों के प्रयास अंततः विफल हो गए क्योंकि अधिकारियों ने इसकी अनुमति नहीं दी।

चूँकि परीक्षा को रोज़गार या उच्च शिक्षा के साथ एक संबंध बिठाना है इसलिए हरेक स्तर पर बदलाव लाने के लिए और उसे सफल बनाने के लिए परीक्षा की प्रक्रिया को पूर्ण रूप से देखना होगा। चूँकि परीक्षाएँ स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा या रोज़गार के मध्य कड़ी का कार्य करती हैं अतः प्रत्येक स्तर पर कोई परिवर्तन इस बात से जुड़ा है कि अगले स्तर पर क्या होता है। वास्तव में परीक्षा के तरीकों में बदलाव तभी प्रभावी होगा जब पूरी शैक्षिक प्रक्रिया को एक साथ देखा जाए जैसे आई.आई.टी. प्रवेश परीक्षा, मेडिकल प्रवेश परीक्षाएँ और राज्यों की पी.ई.टी. तक पी.एम.टी. परीक्षाएँ शायद किसी भी परीक्षा सुधार के रास्ते की मुख्य रुकावटें हैं। सरकार द्वारा दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ परीक्षा में पूर्ण बदलाव लाने के लिए लिया गया निर्णय एक महत्वपूर्ण कदम होगा। सभी संबंधित व्यक्तियों को इकट्ठा करने में ताकि जाँच पृष्ठपोषण तथा अंतिम स्वीकृति के लिए तरह-तरह के मॉडलों को सुझाया जा सके। स्कूल स्तर की परीक्षाओं में आवश्यक सुधार लाने के लिए इस तरह की प्रवेश परीक्षाओं में भी सुधार आवश्यक होगा। और जब तक यह नहीं हो जाता और इसे करने की इच्छा-शक्ति सामने नहीं आती केवल प्रसाधनीय परिवर्तन ही होते रहेंगे। इस बात से कोई फर्क

11. टीचिंग ऑफ साइंस रिपोर्ट एवं भोपाल में आयोजित विज्ञान शिक्षण पर राष्ट्रीय सेमिनार की संस्तुतियाँ, नवंबर 15-17, 1985

नहीं पड़ेगा कि शिक्षा की कितनी नयी नीतियाँ बनाई जा चुकी हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन - उसकी प्रक्रियाएँ एवं निहितार्थ

वर्तमान में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में शिक्षक परीक्षा, परियोजना एवं कार्य को जाँच कर कुछ प्रतिशत अंक देते हैं। यह अंक वार्षिक परीक्षा या बाह्य परीक्षा जोकि बोर्ड द्वारा 5, 8, 10, 12 के अंत में ली जाती है, में मिला दिए जाते हैं। इन्हीं के आधार पर 10 और 12 वर्षों की शिक्षा के बाद विद्यार्थी को प्रमाण पत्र दिया जाता है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को सफल बनाने के लिए ज़रूरी है कि विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक, उच्च स्तर के विद्यालय तथा नियोक्ता में एक सामूहिक समझ हो कि हम मूल्यांकन किस चीज़ का कर रहे हैं।

व्यवस्था को सुधारने के लिए कुछ सुझाव:

- अधिगम के हर पहलू में श्रेष्ठता के लिए संघर्ष करें। खासकर सामग्री बनाने में, काम सुधारने में, विद्यार्थियों की प्रगति की देख-रेख में और उनके प्रश्नों पर प्रतिक्रिया देने में।
- मूल्यांकन की भूमिका उस प्रगति को पाने में होती है जो विद्यार्थी एवं अध्यापिका ने उद्देश्यों को पाने में पाई है और यह चिंतन करने में कि यह और बेहतर कैसे हो सकता था। परीक्षाओं और मूल्यांकन का डर दिखाए बिना पुनरावलोकन और सुधार के अवसर लगातार उपलब्ध होने चाहिए। अंक काटना विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने का विकल्प नहीं हो सकता।
- सीखने के अनुभव का खुद का भी परीक्षण होना चाहिए न केवल उसके परिणाम का। विद्यार्थी अपने अनुभवों की संपूर्णता पर बात करके खुश होते हैं और इस जानकारी को अधिगम व्यवस्था सुधारने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। विद्यार्थी को अपने खुद के अधिगम के अनुभवों का मूल्यांकन करने में सक्षम होना चाहिए - व्यक्तिगत रूप से भी और एक समूह में भी।

संदर्भ

डेविड स्कॉट (सं.), *कॅरिकुलम स्टडीज़ : मेजर थीम्स इन एजुकेशन,* रूटलेज, लंदन, 2003

जी. डब्ल्यू. फोर्ड और लारेंस पुंगी, *दी स्ट्रक्चर ऑफ़ नॉलेज एंड द कॅरिकुलम,* रेंड मैकनल्ली एंड कंपनी, शिकागो, 1964

जोसेफ स्वॉब, *दी प्रैक्टिकल: ए लैंग्वज फॉर कॅरिकुलम,* स्कूल रिव्यू, नवंबर 1969

जोसेफ स्वॉब, *दी प्रैक्टिकल: आर्ट्स ऑफ़ एलेक्टिक,* स्कूल रिव्यू, अगस्त 1971

जोसेफ स्वॉब, *दी प्रैक्टिकल 3: ट्रांसलेशन इनटू कॅरिकुलम,* स्कूल रिव्यू, अगस्त 1973

पी.एच.फीनिक्स, *रिल्म्स ऑफ़ मीनिंग,* मैकग्रा हिल, न्यूयार्क 1964

आर.एफ.डियरडन, *पी.एच. हर्स्ट, आर.एस.पीटर्स (संपादक), एजुकेशन एंड डेवलेपमेंट ऑफ़ रीजन,* रूटलेज एंड कीगन पॉल, लंदन 1978

माइकल गोल्बी, जेन ग्रीनवाल्ड और रूथ वेस्ट (सं.), *कॅरिकुलम डिजाइन,* इ.एल.बी.एस, 1979

केली, ए.वी. (1983; 1999), *दी कॅरिकुलम, थ्योरी एंड प्रैक्टिस,* 4ई, लंदन: पॉल चैपमेन.

स्टेनहाउस, एल. (1975), *एन इंट्रोडक्शन इन कॅरिकुलम रिसर्च एंड डेवलेपमेंट,* लंदन, हेनीमेन।

न्यूमैन, इं. एंड. जी इनग्राम (1989), *दी यूथ वर्क कॅरिकुलम,* लंदन : फरदर एजुकेशन यूनिट (एफ.ई.यू)।

ताबा, एच. (1962), *कॅरिकुलम डेवलेपमेंट: थ्योरी एंड प्रैक्टिस,* न्यूयार्क : हारकोर्ट ब्रास एंड वर्ल्ड।

टाइलर, आर. डब्ल्यू (1949), *बेसिक प्रिंसिपल्स ऑफ़ कॅरिकुलम एंड इंस्ट्रक्शन,* शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस।

आर.एफ.डियरडन, *दी फिलॉस्फी ऑफ़ प्राइमरी एजुकेशन,* रूटलेज एंड कीगन पॉल, लंदन, 1968

जॉन व्हाइट, न्यू एम्स फॉर ए न्यू नेशनल कॅरिकुलम, *इन दि नेशनल कॅरिकुलम बियोंड 2000: द क्यू.सी.ए. एंड द एम्स ऑफ़ एजुकेशन* द्वारा रिचर्ड एल्ड्रिच और जॉन व्हाइट, इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन. लंदन विश्वविद्यालय 1998

अग्निहोत्री, आर. के. संस्करण (2002), *अंडरस्टैंडिंग पेडागॉजीकल इंटरवेंशन,* डी.पी.ई.पी.: तमिलनाडु -ए ड्राफ्ट, विद्या भवन सोसायटी।

बोध (2002), *ए स्टडी ऑफ़ पेडागॉजीकल इंटरवेंशन अंडर डी.पी.ई.पी. महाराष्ट्र-समरी* ***ऑफ़ फाइंडिंग्स,*** बोध।

चेतन (1998), *सोसायटी फॉर इंटिग्रेटेड डेवलेपमेंट ऑफ़ हिमालय-रीडिफाइनिंग एजुकेशन फॉर हॉलिस्टिक डेवलेपमेंट,* चाइल्ड रिसोर्स सेंटर।

दीवान, एच.के. (2002), *ए स्टडी ऑफ़ पेडागॉजिकल इंटरवेंशन अंडर डी.पी.ई.पी.-कर्नाटक,* विद्याभवन सोसायटी।

धनकर, रोहित (2002), *ए स्टडी ऑफ़ पेडागॉजिकल इंटरवेंशन अंडर डी.पी.ई.पी. केरल-समरी ऑफ़ फाइडिंग्स,* दिगंतर।

यू.पी. डी.पी.ई.पी., *ग्लीमर ऑफ़ होप: टूबार्ड्स क्वालिटी प्राइमरी एजुकेशन इन उत्तर प्रदेश*।

गुप्ता, एवं सहयोगी, *टैक्स्टबुक्स विद ए डिफरेंस: ए स्टडी ऑफ़ टू डी.पी.ई.पी. एक्सपेरिमेंट्स,* डिपार्टमेंट ऑफ़ प्री-स्कूल एंड एलीमेंटरी एजुकेशन: एन.सी.ई.आर.टी.।

जैन, शारदा (2004), *लेसन फ्रॉम प्रोमिसिंग प्रैक्टिसिस एंड इंप्लीकेशंस फॉर स्केलिंग अप गर्ल्स' एजुकेशन (ड्राफ्ट),* सितंबर 20-23 को चंडीगढ़ में कॉमनवेल्थ कांफ्रेंस ऑन प्रोमिसिंग प्रैक्टिस एंड इंप्लीकेशंस फॉर गर्ल्स, एजुकेशन में प्रस्तुत किया गया।

जैसप, तांसी (1998), *ए मॉडल ऑफ़ बेस्ट प्रैक्टिसिस एट लौरेटो डे स्कूल, सियालदाह, कोलकाता ओकेज़नल पेपर,* डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलेपमेंट।

झा, ज्योत्सना और कोकिला गुलाटी (2004), *टीचिंग इक्विटी इन अर्ली इयस : ए रिफ्लेक्टिव पेपर ऑन डेवलेपिंग एंड इंप्लीमेंटिग ए सोशल लीनिंग कॅरिकुलम एट प्राइमरी लेबल (ड्राफ़्ट),* सितंबर 20-23 को चंडीगढ़ में कॉमनवेल्थ कांफ्रेंस ऑन प्रॉमिसिंग प्रैक्टिसिस एंड इंप्लीकेशंस फॉर गर्ल्स, एजुकेंशन में प्रस्तुत किया गया।

एन.सी.ई.आर.टी. (1998), *नेशनल कॅरिकुलम फॉर एलीमेंटरी एंड सेकेंडरी एजुकेशन: ए फ्रेमवर्क* (संशोधित संस्करण), एन.सी.ई.आर.टी.।

रामचंद्रन एवं सहयोगी (2001), *रिफ्लेक्शन ऑन इक्विटी, क्वालिटी एंड लोकल प्लानिंग इन ए डिसिट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम ऑकेज़नल पेपर,* दी यूरोपियन कमीशन।

रामचंद्रन, विमला (2004), *फोस्टरिंग ऑपोर्चुनिटिज़ टू लर्न एट एन एक्सीलरेटेड पीस: व्हाई डू गर्ल्स बेनिफीट इनॉरमसली?* (ड्राफ्ट), सितंबर 20-23 को चंडीगढ़ में कॉमनवेल्थ कांफ्रेंस ऑन प्रैक्टिस एंड इंप्लीकेशंस फॉर गर्ल्स एजुकेशन में प्रस्तुत किया गया।

रामपाल, अनीता (2000), *कॅरिकुलम चेंज फॉर क्वालिटी एजुकेशन: ए स्टडी ऑफ़ स्कूल्स इन डी. पी.ई.पी और गैर-डी.पी.ई.पी.,* ज़िला, केरल में "यूनिसेफ"।

संभव (2002), *ए स्टडी ऑन पेडागॉजिकल रिनुअल प्रोसेस इन छत्तीसगढ़ एंड मध्य प्रदेश,* "संभव"।

एजुकेशनल कंसल्टेंट्स लिमिटेड (2001), *इनसाइड द स्कूल: ए सिंथेसिस ऑफ़ केस स्टडीज ऑफ़ क्लासरूम प्रोसेस,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

यादव, एस.के.(2003), *टेन इयर्स स्कूल कॅरिकुलम इन इंडिया-ए स्टेटस स्टडी,* एन.सी.ई.आर.टी.।

भारत सरकार (1971), *एजुकेशन एंड नेशनल डेवलेपमेंट: रिपोर्ट ऑफ़ द एजुकेशन कमीशन 1964-66,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

भारत सरकार (1968), नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन 1968, शिक्षा मंत्रालय, नयी दिल्ली

भारत सरकार (1977), *रिपोर्ट ऑफ़ द रिव्यू कमेटी ऑन द कॅरिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल* (ईश्वर भाई पटेल आयोग), शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, नयी दिल्ली।

भारत सरकार (1986), *नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन 1986 और प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन 1986,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली।

भारत सरकार (1990), *टूवार्ड्स एन एनलाइटेंड एंड ह्यूमन सोसायटी: रिपोर्ट ऑफ़ द कमेटी फॉर रिव्यू ऑफ़ नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986* (आचार्य राममूर्ति कमेटी), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, दिसंबर 1990

भारत सरकार (1992), *रिपोर्ट ऑफ़ द सी.ए.बी.ई. कमेटी ऑन पॉलिसी,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, जनवरी 1992

भारत सरकार (1992), *नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन 1986* (1992 में संशोधित), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली।

भारत सरकार (1993), *लर्निंग विदाउट बर्डन: रिपोट ऑफ द नेशनल एडवाइजरी कमेटी,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली।

एन.सी.ई.आर.टी. (1975), द *कॅरिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल-ए फ्रेमवर्क,* नयी दिल्ली।

एन.सी.ई.आर.टी. (1988), *नेशनल कॅरिकुलम फॉर एलीमेंटरी एंड सेकेंडरी एजुकेशन-ए फ्रेमवर्क,* नयी दिल्ली।

एन.सी.ई.आर.टी. (2000), *नेशनल कॅरिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन,* नयी दिल्ली।

भारत सरकार (1992), *रिपोर्ट ऑफ़ द सी.ए.बी.ई. कमेटी ऑन पालिसी,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग।

एन.सी.ई.आर.टी. (1986), *इवोल्यूएशन ऑफ़ टैक्स्टबुक्स फ्रॉम द स्टैंडप्वाइंट ऑफ़ नेशनल इंटिग्रेशन गाइडलाइंस,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली।

लॉटन, डी. और उनके सहयोगी (1978), *थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ़ करिकुलम स्टडीज,* रूटलेज एंड कीगन पॉल, लंदन।

गोयल, बी.एस. और शर्मा जे.डी. (1984), *ए स्टडी ऑफ़ इवोल्यूशन ऑफ़ द टैक्स्टबुक,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली।